प्रकाशकः—

सेठ श्री चम्पालालजी बांठिया
बीकानेर

प्रथमावृत्ति १५०० | ईस्वी सन् १९५१ | मूल्य २)

मुद्रकः—
श्री जालमसिंह के प्रबन्ध से
गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,
ब्यावरमें मुद्रित.

दो शब्द

'संवत्सरी' पाठकों के कर-कमलों तक पहुँचाते हुए हमें असीम प्रसन्नता है। यह किरण अन्य किरणों की अपेक्षा कुछ विशेषता रखती है। इसमें आचार्यश्री के प्रकाशित और अप्रकाशित-उपलब्ध साहित्य में से विशिष्ट सूक्तियों का संग्रह किया गया है। जो व्याख्यान-साहित्य हमारे पास मौजूद नहीं था, उसमें की सूक्तियाँ इसमें संगृहीत नहीं की जा सकी हैं। यह कार्य किसी दूसरे समय और दूसरे संग्राहक के लिए समझिए। मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि वह साहित्य भी प्रकाश में आ जाय और छिपा ही न पड़ा रहे, अन्यथा समय पकने पर वह नष्ट हो जायगा और न केवल जैनसम्प्रदाय की, वरन् मानवसमाज की एक अनमोल निधि छूट जायगी।

'संवत्सरी' संग्रह कैसा बन पड़ा है, इस सम्बंध में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। इसका निर्णय पाठक स्वयं करें।

संवत्सरी के सम्बन्ध में इतना सूचन कर देना उपयुक्त होगा कि यह पुस्तक सरसरी नजर से पढ़ने की नहीं है। इसके प्रत्येक वाक्य में गहरा मर्म छिपा है। अतः पाठकगण प्रत्येक वाक्य को पढ़कर उस पर गहरा चिन्तन-मनन करें। ऐसा करने पर प्रतिदिन एक पृष्ठ का वांचन भी पर्याप्त खुराक सिद्ध होगा।

किरणावली-साहित्य को प्रसारित करने वाले, समाज के अनन्य-उत्साही और कुशल कार्यकर्त्ता श्रीमान् सेठ चम्पालालजी बांठिया की ओर से ही यह किरण प्रगट हो रही है। मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है। इसके लिए पाठकों की ओर से हम बांठियाजी के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं।

इस पुस्तक की सहायता से अगर कुछ पाठकों का भी जीवननिर्माण हो सका तो हम अपना प्रयास सार्थक समझेंगे।

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

प्राक्कथन

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज जैन समाज के सुप्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। इनके शुभ नाम से सब कोई सुपरिचित हैं। जैन समाज में पुराने समय से चली आई कितनीक रूढ़ मान्यताओं को आचार्यश्री ने स्पष्ट करके एक क्रान्ति की लहर फैला दी है।

खेती (काश्त) करना, गोपालन करना, चर्खा चलाना, चक्की पीसना, आदि गृहस्थोचित कार्यों में भी महा पाप माना जाता था और बड़े २ मिल और कल-कारखानों में बने कपड़े, मोल का दूध-मिठाई, पवन-चक्की में पिसे हुए आटे आदि का उपयोग कम पाप वाला समझा जाता था। अर्थात् अल्पारंभ महारंभ का विवेक सूक्ष्म, अहिंसा का विचार करने वाले जैन भूल बैठे थे। उनको बुद्धि, तर्क और शास्त्रीय दृष्टि से अल्पारंभ महारंभ का विवेक समझाया। व्याख्यानों द्वारा आध्यात्मिक और शास्त्रीय गूढ़ रहस्यों को बड़ी सरल और रोचक शैली से समझाया। वास्तव में यह विचार-धारा युग-प्रधान पुरुष जैसी युग-परिवर्तन करने वाली थी।

पूज्यश्री के व्याख्यान, सुनने वाले जैन व जैनेतर, राष्ट्रीय व सामाजिक, धार्मिक व आध्यात्मिक श्रोताओं पर गहरा प्रभाव डालते थे।

पूज्यश्री के प्रशंसक और परोपकारी श्रावकों ने पूज्यश्री की वाणी को अमर और उपयोगी बनाये रखने के लिये पूज्यश्री के व्याख्यानों का संग्रह करवाया और हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम ने इसे प्रकाशित करने का आयोजन किया। बिखरे हुए मोतियों की माला बनाने से वस्तु की शोभा और उपयोगिता बढ़ने के साथ २ क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित संग्रह होता है। अनमोल चीजों की सुरक्षा इसी प्रकार करना चाहिये। इस दीर्घदृष्टि से श्रीजवाहर साहित्य समिति, भीनासर ने पूज्यश्री के व्याख्यानों और विचारों को 'जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित करना प्रारंभ किया।

भीनासर के साहित्यरसिक श्रीमान् सेठ चम्पालालजी बांठिया ने दिलचस्पी और कुशलता के साथ बिना फण्ड को एकत्र किये ही जवाहर साहित्य समिति का संचालन किया। पूज्यश्री के विचारों से प्रभावित और प्रशंसक सज्जन एक २ किरण का प्रकाशन खर्च देते रहे और कार्य चलता रहा। यह अनमोल साहित्य खूब प्रशंसा और प्रतिष्ठा पाया। जिससे भारत भर में इस किरणावली की काफी मांग और खपत होने लगी। अखबारों में भी किरणावली के उतारे और लेख प्रकाशित होकर ज्ञानपिपासुओं को परोसे जा रहे हैं।

दो वर्ष जितने अल्पकाल में जवाहर-किरणावली के चौवीस किरण प्रकाशित होना इसकी अत्यधिक सफलता का द्योतक है।

श्री जैन गुरुकुल ब्यावर के प्रधानाध्यापक पं. शोभाचंद्रजी भारिल्ल, न्यायतीर्थ जैसे हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक की अथक

संपादनसेवा भी इस किरणावली की सफलता में खास स्थान रखती है। अस्तु।

'संवत्सरी' यह जवाहर किरणावली की २२ वीं किरण है। 'संवत्सरी' इसका सार्थक नाम है। एक संवत्सर (वर्ष) के कार्तिक शुक्ला १ से लेकर कार्तिक कृष्णा अमावस (दीपावली) तक ३६० दिन होते हैं। इसी प्रकार पूज्यश्री के विचारों का स्वाध्याय-संग्रह का. शु. १ से का. कृ. अमावस तक ३६० दिनों में इस 'संवत्सरी' किरण में संग्रहीत किया है। पूज्यश्री के विचार-सागर के मंथन का यह अमृत है, विचार प्रवाह का यह संग्रहीत निर्मल कुंड है, विचारसार (मावा) है। स्वाध्यायप्रेमियों के लिये यह दुर्लभ संग्रह है।

महापुरुषों ने स्वाध्याय का अत्यधिक महत्व बताया है और उसे आवश्यक कर्त्तव्य बताया है। साधु पुरुषों के दैनिक जीवन का चौथाई हिस्सा स्वाध्याय में व्यतीत करने का प्रभु का आदेश है। गृहस्थों को भी संवर, सामायिक आदि में स्वाध्याय करना आवश्यक होता है।

स्वाध्याय द्वारा महापुरुषों के विचार पढ़ने में आते हैं, मनन द्वारा चित्त पर असर करते हैं और यथाशक्य वर्तन (चारित्र) में उतरते हैं। इस लिये प्रत्येक प्रगति प्रेमी आत्मा को प्रतिदिन नियमित थोड़ा समय भी यथावकाश स्वाध्याय करना जरूरी है। क्रमशः उन्नति का-आगे बढ़ने का यही एक मात्र सरल उपाय है।

वर्तमान पौद्गलिक युग में स्वाध्याय के लिये बहुत कम समय मिलता है। फिर भी 'कथरोट में गंगा' जैसा थोड़े

समय में सार रूप विचार संग्रह मिल जाता हो तो प्रतिदिन १०-१५ मिनिट निकालने को हर कोई प्रसन्नता से तैयार हो सकता है। ऐसे सर्व साधारण के लिये 'संवत्सरी' के नाम से दैनिक विचारसार संग्रह जो प्रकाशित हो रहा है, ठीक सुवाच्य और उपयुक्त होगा। विचारकों के लिये यह संग्रह बहुमूल्य है ही।

इस विचार-संग्रह में सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक, तार्किक आदि विविध कोटिके पाठ मिलेंगे। जिसका स्वाध्याय एवं मनन करने से पाठक क्रमशः सर्वदेशीय-सर्वाङ्गीण ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

जैनों में 'संवत्सरी' महापर्व माना जाता है। सारे वर्ष में एक ही बार आता है और आत्मशुद्धि करा जाता है। इसी तरह पूज्यश्री श्रीजवाहरलालजी महाराज के अलौकिक और सर्वांगीण विचारों का सार-संग्रह यह 'संवत्सरी' किरण है। पाठक इसको स्वाध्याय पुस्तक के रूप में अपने साथ रख कर इसका नियमित स्वाध्याय प्रतिदिन सिर्फ १ पृष्ठ का ही करता रहेगा तो अलभ्य लाभ प्राप्त करेगा। ज्ञानवृद्धि के साथ आत्म विकास कर सकेगा। सत्साहित्य सदा का साथी सत्संग है। किं बहुना ?

श्री जैन गुरुकुल ब्यावर
जन्माष्टमी सं० २००६ } धीरजलाल के. तुरखिया

संवत्सरी

कार्तिक शुक्ला १

अकसर लोग सरल काम को कठिन और कठिन काम को सरल समझ बैठते हैं। यह बुद्धि का विकार है। इसी बुद्धि-विकार के कारण परमात्मा का स्वरूप समझना कठिन कार्य जान पड़ता है। वस्तुतः परमात्मा का स्वरूप समझना सरल है।

* * * *

तुम कौन हो ? तुम माता के उदर में से नहीं आये हो, वरन् परलोक से आये हो और परलोक में जाने वाले हो। इस प्रकार तुम अविनाशी हो। अपने आपको समझने का यत्न करो।

* * * *

पानी भरने के लिए गई हुई पाँच-सात सहेलियाँ हास्य-विनोद करती हैं, बातचीत करती हैं, फिर भी उनका ध्यान तो सिर पर रखे घड़े में ही रहता है। इसी प्रकार जब मन को परमात्मा में एकाग्र कर लिया जाता है तो दूसरे कार्य भी रुकते नहीं हैं।

* * * *

तुम जिसकी सेवा करते हो उस पर ऐहसान मत जताओ। उपकार समझ कर नहीं वरन् कर्त्तव्य समझ कर सेवा करो। ऐसा करने से तुम्हारे चित्त में अहंकार नहीं जनमेगा।

कार्तिक शुक्ला २

सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिये अगर परमात्मा से प्रार्थना करोगे तो याद रक्खो, संसार के पदार्थ तुम्हें लात मार कर चलने बनेंगे और तुम्हारी तृष्णा ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

* * * *

अपना भला चाहते हो तो दूसरों का भला चाहो। दूसरों का बुरा चाहना अपना बुरा चाहना है।

* * * *

पश्चात्ताप करने से पाप का प्रक्षालन तभी होता है जब पुनः पाप करने की भावना न हो। गंगास्नान से सब पाप धुल जाएँगे, ऐसा सोचकर पापों में अधिकाधिक प्रवृत्ति करने वालों का अनुकरण मत करो।

* * * *

व्यक्तिगत लाभ-अलाभ से पहले, समूहगत लाभ-अलाभ का विचार करना उचित है। व्यक्ति की हानि होगी तो एक की ही हानि होगी। अतः समष्टिगत स्वार्थ, व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा प्रधान है।

कार्तिक शुक्ला ३

तुम्हें आज जो तन-धन की प्राप्ति हुई है सो धर्म के प्रताप से ही। ऐसी अवस्था में धर्म के लिए क्या तन-धन को समर्पण नहीं कर सकते ?

* * * *

हे प्रभो ! मेरी जीभ में जितनी शक्ति है, उस सब का संग्रह करके मैं तेरा ही गुणगान करूँगा। तेरा गुणगान करने में मैं कभी तृप्ति नहीं मानूँगा।

* * * *

जैसे प्रकाश की विद्यमानता में अन्धकार नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार अन्तःकरण में परमात्मा को स्थापित करने से पाप नहीं ठहर सकता।

* * * *

दुःखों से बचने के लिए परमात्मा का स्मरण करना एक प्रकार की कायरता है। परमात्मा का स्मरण दुःख सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए करना उचित है।

* * * *

हजारों साधन भी जब रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं तो क्या यह सिद्ध नहीं होता कि पुण्य की अदृश्य शक्ति ही वास्तव में प्राणी की रक्षा करती है ?

कार्तिक शुक्ला ४

अहंकार से बुद्धि भी अहंकारमय बन जाती है और ऐसी बुद्धि आत्मा को पतित करती है। अहंकारबुद्धि आत्मा के हित की किसी बात का ध्यान नहीं रखती। वह सीधी बात को उल्टी और उल्टी बात को सीधी बतलाती है।

* * * *

मन, वाणी और क्रिया को शुद्ध करके जब परमात्मा की प्रार्थना की जाती है तो शान्ति प्राप्त होती ही है। परमात्मा निमित्त कारण है और आत्मा उपादान कारण। आत्मा शुद्ध होगा तो परमात्मा के द्वारा अवश्य शान्ति मिलेगी।

* * * *

जिसके शरीर पर अशुचि लगी है, उसे राजा से मिलने में संकोच होता है और राजा भी उससे नहीं मिलता; इसी प्रकार जब तक आत्मशुद्धि न हो तब तक परमात्मा से भेंट नहीं हो सकती।

* * * *

एकान्तवास भयंकर होता है। लेकिन एकान्तवास के साथ अगर ज्ञान-भाव हो तो वह अत्यन्त लाभप्रद भी सिद्ध होता है।

कार्तिक शुक्ला ५

तुम्हारे अन्तःकरण में मैत्रीभावना होगी तो जिसे तुम विरोधी समझते हो, उसमें भी वही भावना उत्पन्न हुए बिना न रहेगी। तुम्हें सिंह हिंसक जान पड़ता है, इसका कारण यही है कि तुम्हारे भीतर हिंसा की भावना है। तुम्हारे भीतर की हिंसा ही सिंह और साँप को हिंसक बनाती है।

* * * *

ज्ञानीजन मृत्यु को भी महोत्सव मानते हैं। उनकी दृष्टि में शरीर-पींजरे से आत्मा का छुटकारा होना बुरी बात नहीं है।

* * * *

एक प्रकार से मृत्यु ही कल्याण का मार्ग है। कल्पवृक्ष की कल्पना तो दूर की है, मगर मृत्यु साक्षात् कल्पवृक्ष है। मृत्यु से यथेष्ट फल प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि मृत्यु के समय जैसे भाव होंगे वैसा फल मिलेगा।

* * *

जैसे कच्चे घड़े को आग में पकाने के पश्चात् ही उसमें पानी रह सकता है, उसी प्रकार मृत्यु का ताप सहने के पश्चात् ही आत्मा समाधिमरण के कारण शान्ति प्राप्त करता है।

कार्तिक शुक्ला ६

दूसरे के अधिकार को अपहरण करके यश प्राप्त करने की इच्छा मत करो; जिसका अधिकार हो उसे वह सौंप कर यश के भागी बनो।

*　　　*　　　*　　　*

जो अपने पापों को स्वच्छ हृदय से प्रकट करके पवित्र बन जाता है वह परमात्मा को प्यारा लगता है। अपने पापों का गोपन करने वाला अधिक पापी बनता है।

*　　　*　　　*　　　*

सन्तान तो पशु भी उत्पन्न करते हैं। इसमें मनुष्य की कोई विशेषता नहीं है। मनुष्य की विशेषता सन्तान का समुचित रूप से पालन-पोषण करके सुसंस्कारी बनाने में है।

*　　　*　　　*

किसी स्वजन की मृत्यु के पश्चात् छाती पीटना और रोना प्रगाढ अविवेक का लक्षण है। ऐसा करने से न मृतात्मा वापिस लौटता है और न रोने वाले का दुःख ही दूर हो सकता है। ऐसे प्रसंगों को संसार का वास्तविक स्वरूप बतलाने वाला बोध-पाठ मानना चाहिए।

कार्तिक शुक्ला ७

जब तक तुम्हारा मस्तिष्क और हृदय निंदा और प्रशंसा को समान रूप में नहीं ग्रहण करता, समझना चाहिए कि तुमने तब तक परमात्मा को पहिचाना ही नहीं है।

* * * *

प्रशंसा और निन्दा सुनकर हर्ष और विषाद की उत्पत्ति बुद्धि के विकार के कारण होती है। बुद्धि का यह विकार परमात्मा की प्रार्थना से निश्शेष हो जाता है।

* * * *

जिस दिन पृथ्वी पर पतिव्रता का अस्तित्व नहीं रहेगा, उस दिन सूर्य, पृथ्वी और समुद्र अपनी-अपनी मर्यादा त्याग देंगे।

* * * *

जो पुरुष परधन और परस्त्री से सदव यत्नपूर्वक बचता रहता है, उसका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

* * * *

तुम्हारे सुसंस्कारों को दुस्संस्कार दबा देते हैं और तुम गफ़लत में पड़े रहते हो। दृढ़ता के साथ अपने सुसंस्कारों की रक्षा करो तो आत्मा की बहुत उन्नति होगी।

कार्तिक शुक्ला ८

जिसका हृदय पापों को नष्ट करने के लिये अत्यन्त दृढता-पूर्वक तैयार हो गया है, वह भूतकाल में कैसा ही बड़ा पापी क्यों न रहा हो, अवश्य ही पापों को नष्ट करके निष्पाप बन सकता है ?

* * * *

तुम्हारे इस बहुमूल्य जीवन का समय निरन्तर-अविश्रान्त गति से व्यतीत होता जा रहा है । जो समय जा रहा है वह फिर कभी नहीं मिलेगा । इसलिये हे मित्र, प्रमाद में समय मत गँवाओ । कोई ऐसा कार्य करो जिससे तुम्हारा और दूसरों का कल्याण हो ।

* * * *

सच्चा पति वही है जो पत्नी को पवित्र बनाता है और सच्ची पत्नी वही है जो अपने पति को पवित्र बनाती है, संक्षेप में जो अपने दाम्पत्य जीवन को पवित्र बनाते हैं, वही सच्चे पति-पत्नी हैं ।

* * * *

क्रोध और अहंकार को जीतने वाला पुरुष महान् है । क्रोध-विजयी पुरुष ही लोकप्रिय बन सकता है ।

कार्तिक शुक्ला ६

जीभ सँभाल कर बोलने का पहला स्थान पति-पत्नी की बात-चीत में है। जो घर में जीभ सँभाल कर बोलता है वह बाहर भी जीभ सँभाल कर बोलेगा; जो घर में जीभ पर काबू नहीं रख सकता वह बाहर भी काबू नहीं रख सकेगा।

* * * *

परमात्मा का मौखिक नामस्मरण करने से सच्चा शरण नहीं मिलता। परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्ममार्ग पर चलने में ही सच्चा शरण है।

* * * *

जिसके अन्तःकरण में परमात्मा के प्रति अनन्य विश्वास है, जो हृदय से परमात्मा को मानता है और जिसे परमात्मा के अस्तित्व में लेशमात्र भी संदेह नहीं है, उसे ही परमात्मा की प्रार्थना करने का सच्चा अधिकार है।

* * * *

केतकी के साथ प्रीति जोड़कर भ्रमर दूसरी जगह नहीं जाता और केतकी की सुगंध लेने में ही लीन रहता है— दुर्गंध की ओर नहीं जाता; इसी प्रकार तुम अपने विषय में देखो कि परमात्मा के प्रति प्रीति जोड़ने के बाद तुम्हारा मन दुर्गुणों-पापों की ओर तो प्रवृत्त नहीं होता?

कार्तिक शुक्ला १०

गन्ना खेत में लगा हुआ भी मीठा रहता है और पानी में पेरते समय भी मीठा रहता है। सोना चाहे खान में हो, चाहे गले में धारण किया हो, सोना ही रहता है। इसी प्रकार धर्मात्मा चाहे सुख में हो, चाहे दुःख में हो, धर्मात्मा ही रहता है।

* * * *

चमगीदड़ दिन में नहीं देख सकता तो क्या हम दिन में देखना छोड़ देते हैं? तो फिर किसी मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व को देख कर हम अपना सम्यक्त्व क्यों छोड़ दें?

* * * *

जिस वीर्य से तीर्थंकर जैसे महान् पुरुषों की उत्पत्ति हो सकती है उस वीर्य का अनावश्यक व्यय करना कैसे उचित कहा जा सकता है? ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले तो प्रशंसा के पात्र हैं ही, किन्तु जो वीर्य का दुर्व्यय नहीं होने देता और नीति को पालन करता है, वह भी धन्यवाद का पात्र है।

* * * *

जैसे सोना पाने के लिए धूल त्याग देना कठिन नहीं है, उसी प्रकार परमात्मा का वरण करने और सत्य-शील को स्वीकार करने के लिए तुच्छ विषयभोगों का त्याग करना क्या बड़ी बात है?

कार्तिक शुक्ला ११

भोग-विलास की सामग्री जब तुम्हारे हृदय को आकर्षित करने लगे तब इतना विचार अवश्य कर लेना कि हमारे मौज-शौक के लिए कितने जीवों को, कितना कष्ट पहुँचता है?

* * * *

जो पुरुष, स्त्री को गुलाम बनाता है, वह स्वयं गुलाम बन जाता है। जो पुरुष स्त्री को 'देवी' बनाता है, वह 'देव' बन जाता है।

* * * *

सम्पत्ति पाकर सज्जन पुरुष अधिक नम्र हो जाता है और अपने उत्तरदायित्व के भार को अनुभव करता है।

* * * *

सच्चा साधु वह है जो वंदना-नमस्कार करने से प्रसन्न नहीं होता और गालियाँ सुनकर क्रुद्ध नहीं होता। समभाव साधु का सर्वस्व है। इससे विरुद्ध वर्त्ताव करने वाला साधु, साधुता को अपमानित करता है।

* * * *

पक्षी अपनी शक्ति के अनुसार आकाश में बहुत ऊँचे उड़ते हैं फिर भी आकाश का पार नहीं पाते। इसी प्रकार छद्मस्थ, परमात्मा के स्वरूप के विषय में अनेक तर्क-वितर्क और कल्पनाएँ करते हैं किन्तु परमात्मा के स्वरूप का पार नहीं पा सकते।

कार्तिक शुक्ला १२

साधारणतया संसार के सभी प्राणी कोई न कोई क्रिया करते हैं। लेकिन अज्ञानपूर्वक की जाने वाली क्रिया से कुछ भी आध्यात्मिक लाभ नहीं होता। जो क्रिया, ज्ञानानुसारिणी नहीं है वह प्रायः निष्फल ही सिद्ध होता है।

*   *   *   *

संकल्प-शक्ति एक महान शक्ति है। अगर तुम्हारा संकल्प सच्चा और सुदृढ है तो निश्चय ही तुम्हारे दुःखों का अन्त आये बिना नहीं रह सकता। हां, ढीले संकल्प से कुछ होता-जाता नहीं है।

*   *   *   *

शरीर-रथ है। इन्द्रियां इस रथ के घोड़े हैं। मन सारथी है। आत्मा रथ में विराजमान रथी है। रथ और रथी को अलग अलग न मानना अंधापन है।

*   *   *   *

जब कोई तुम्हारी निन्दा करने लगे तो आत्म-निरीक्षण करने लगो। इससे बड़े लाभ होंगे।

*   *   *   *

जैसे पनिहारी हँसती-बोलती जाती है पर सिर पर रक्खी खेप को नहीं भूलती, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष सांसारिक कार्य करता हुआ भी भगवान को नहीं भूलता।

कार्तिक शुक्ला १३

उपवास शरीर और आत्मा-दोनों के लिए लाभप्रद है। हमेशा पेट में आहार भरते रहोगे और उसे तनिक भी विश्राम न लेने दोगे तो पेट में विकार उत्पन्न हुए विना नहीं रहेगा। अतएव शरीर और आत्मा को स्वस्थ रखने के लिए उपवास अत्यन्त उपयोगी है।

* * * *

लोग सांसारिक सुख को पकड़ने का जितना प्रवल प्रयत्न करते हैं, सुख उतनी ही तेजी के साथ उनसे दूर भागता है।

* * * *

सांकल की एक कड़ी खींचने से जैसे सारी सांकल खिंच आती है, उसी प्रकार परमात्मा की कोई भी शक्ति अपने में खींचने से समस्त शक्तियाँ खिंच आती हैं।

* * * *

तुम मानते हो कि हम महल और धन-दौलत आदि के स्वामी हैं, पर एक वार एकाग्र चित्त से सोचो कि वास्तव में ही क्या तुम उनके स्वामी हो? कहीं वह तुम्हारे स्वामी तो नहीं हैं? तुम उनके गुलाम ही तो नहीं हो?

* * * *

जो निर्वल है वही दुख का भागी होता है। वलवान् को कौन सता सकता है? बेचारे बकरे की वलि चढ़ाई जाती है। शेर की वलि कोई नहीं चढ़ाता।

कार्तिक शुक्ला १४

संस्कार की दृढ़ता के कारण माता के साथ दुराचार सेवन करने का स्वप्न में भी विचार नहीं आता; यही संस्कार अगर पर-स्त्री-मात्र के विषय में दृढ़ हो जाय तो आत्मा का बहुत उत्थान हो।

* * * *

वीर्य मनुष्य का जीवन-सत्व है। वीर्य का ह्रास होने से जीवन का ह्रास होता है। ऐसी स्थिति में वीर्य का दुरुपयोग करने से बड़ा दुर्भाग्य और क्या कहा जा सकता है?

* * * *

उपास्य की उपासना के लिए उपासक को साधनों का अवलम्बन लेना पड़ता है। आत्मा, प्राणों को व्यर्थ न मान कर अगर ईश्वर-उपासना का साधन मानेगा तो प्राण ईश्वर के प्रति समर्पित रहेंगे। और जब समस्त प्राण ईश्वर के प्रति समर्पित हो रहेंगे तो मुख-मंडल पर ऐसी दीप्ति-तेजस्विता प्रकट होगी कि उसके आगे संसार के समस्त तेज फीके पड़ जाएँगे।

* * * *

वह-सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं विपत्ति है, जो आत्मा और परमात्मा के बीच में दीवाल बन कर खड़ी हो जाती है और दोनों के मिलन में बाधा डालती है।

कार्तिक शुक्ला १५

पलक मारना बन्द करके, अपने नेत्रों को नाक के अग्र भाग पर स्थापित करो। जब तक पलक न गिरगें, मन एकाग्र रहेगा। मगर यह द्रव्य-एकाग्रता है। आंखों की ज्योति को अन्तर्मुखी बना लो तो आत्मा में अपूर्व प्रकाश दिखाई देगा।

* * * *

वास्तव में वह अनाथ है, जो दूसरों का नाथ होने का अभिमान करता है। सनाथ वह है जो अपने को दूसरों का नाथ नहीं मानता और अपने आत्मा के सिवाय दूसरों को अपना नाथ नहीं समझता।

* * * *

जितने महापुरुष हुए हैं, सब इस पृथ्वी पर ही हुए हैं। इस पृथ्वी पर रहते हुए अपना और पराया कल्याण जितना किया जा सकता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं—देवलोक में भी नहीं। देवलोक में सभी जीव सुखी हैं। वहां किस पर करुणा की जाएगी? करुणा करने का स्थान तो यह भूमि है। अतएव आत्महित करने के साथ परहित करने में उत्साह रक्खो—ऐसा उत्साह जो कभी कम ही न हो।

मृगशीर्ष कृष्णा १

अनेकानेक प्रयत्न करने पर भी जो वस्तु प्राप्त होना कठिन है, वह आत्मसंयम से सहज ही प्राप्त हो जाती है।

* * * *

सूर्य स्वयं प्रकाशमय है, किन्तु बादलों के आवरण के कारण उसका प्रकाश दब जाता है। जब बादल हट जाते हैं तो सूर्य फिर ज्यों का त्यों प्रकाशमय हो उठता है। इसी प्रकार आत्मा ज्ञानमय है किन्तु कर्मजन्य पदार्थों पर अपना स्वामित्व स्थापित करने के कारण उस पर अज्ञान का आवरण चढ़ा है। आवरण हटने पर आत्मा ज्ञानमय है। बादलों को हटाना सूर्य के हाथ की बात नहीं है पर अपना अज्ञान हटाना आत्मा के अधिकार में है। देह भिन्न और आत्मा भिन्न है, शरीर खंडित तथा विनाशशील है और आत्मा अखंडित तथा अविनाशी है, शरीर जड़ और आत्मा चेतन है, इस प्रकार का विवेक उत्पन्न होते ही अज्ञान विलीन हो जाता है।

* * * *

वास्तव में काम, क्रोध आदि विकार ही दुःखरूप हैं। परमात्मा का स्मरण और भजन करते रहने से यह विचार पास में नहीं फटकने पाते और तब दुःख भी शेष नहीं रहता।

मार्गशीर्ष कृष्णा २

क्यों जी, तुम जिन भोगविलासों को सुख का कारण मानते हो उन्हें,ज्ञानी पुरुषों ने क्यों त्यागा है ? भोग-विलास अगर सुख के कारण होते तो ज्ञानी क्यों त्यागते ? अगर उन त्यागी पुरुषों के प्रति तुम्हारी आस्था है तो उनका अनुकरण क्यों नहीं करते ?

* * * *

जिस वस्तु के साथ तुम अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हो, पहले उससे पूछ देखो कि वह तुम्हें त्याग कर चली तो नहीं जाएगी ?

इसी प्रकार अपने कान-नेत्र, नाक आदि से पूछ लो कि वे बीच में दगा तो नहीं देंगे ? अगर दगा देते हैं तो तुम उन्हें अपना कैसे मान सकते हो ?

* * * *

तुम दूसरों को अपना मित्र बनाते फिरते हो, लेकिन क्या कभी अपनी जीभ को भी मित्र बनाने का प्रयत्न किया है ? अगर तुम्हारी जीभ तुम्हारे साथ शत्रुता रखती है तो दूसरा मित्र क्या रक्षा कर सकेगा ? इसके विपरीत अगर तुम्हारी जीभ मित्र है तो संसार तुम्हारा मित्र बन जाएगा ।

मार्गशीर्ष कृष्णा ३

नीति और धर्म, यह दोनों जीवन-रथ के दो चक्र हैं। दोनों में से एक के अभाव में जीवन की प्रगति रुक जाती है।

* * * *

हे आत्मन्! क्या तुझे अपनी पूर्वकालीन स्थिति का भान है? जरा स्मरण तो कर, तू ने कहाँ-कहाँ के कितने चक्कर लगाये हैं? अब, जब ठिकाने पर आया है तो पागलों की तरह बेभान न हो।

* * * *

परमात्मा की प्रार्थना को गौण और दुनियादारी के कामों को मुख्य मत मानो। दुनियादारी के काम छूट नहीं सकते तो कम से कम उन्हें गौण और परमात्मा की प्रार्थना को प्रधान मानो। इतने से भी तुम्हारा कल्याण होगा।

* * *

विवेक-ज्ञानी पुरुष अपने शरीर को पालन करता हुआ भी तीन लोक की सम्पदा को तुच्छ मानता है। वह आत्मा और धर्म को ही सारभूत गिनता है। आत्मा और शरीर का विवेक समझने वाला कभी पाप का भागी नहीं बनता। वह सांसारिक वस्तुओं के प्रलोभन में पड़कर ठगाता नहीं है।

मार्गशीर्ष कृष्णा ४

ईशप्रार्थना दो प्रकार की है, असली और नकली। जिस प्रार्थना का उद्भव अन्तरतर से होता है, जो हृदय के रस से सरस होती है, वह असली प्रार्थना है। और जो जीभ से निकलती है वह नकली एवं लोकदिखाऊ प्रार्थना है। अन्तरतर से निकली हुई प्रार्थना से ही अन्तरंग की शुद्धि होती है।

* * * *

भोग भोग लेने से मनुष्य-शरीर की सार्थकता नहीं होती। भोगों को भोगना तो पाशविक जीवन व्यतीत करना है। भोगों की इच्छा पर विजय पाना ही मानव शक्ति की सार्थकता है।

* * * *

जैसे दीपक के प्रकाश के सामने अन्धकार नहीं रह सकता उसी प्रकार शील के प्रकाश के सामने पाप का अन्धकार नहीं ठहर सकता। मगर पाप के अन्धकार को मिटाने और शील के प्रकाश को फैलाने के लिए दृढ़ता, धैर्य और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है।

* * * *

धर्म कोई बाहर की वस्तु नहीं है। वह अन्दर से पैदा होता है। खराब कामों से बचना और सदाचार के साथ सम्बन्ध जोड़ना ही धर्म है।

मार्गशीर्ष कृष्णा ५

परमात्मा की शरण लेने से निश्चय ही दुःख का विनाश होता है और वह दुःख का विनाश सदा के लिए ही होता है।

* * * *

बालकों के कोमल दिमाग में कल्पना का जो भूत घुस जाता है, वही समय पाकर असली भूत का रूप धारण कर लेता है।

* * * *

भ्रमर और फूल, सूर्य और कमल, तथा पपीहा और मेघ में जैसा प्रेम-सम्बन्ध है, वैसा ही सम्बन्ध जब भक्त और भगवान् में स्थापित हो जाता है, तभी प्रार्थना सच्ची होती है।

* * * *

कुटुम्ब का भार उठाने की शक्ति न होने पर भी सन्तान उत्पन्न करना और अपनी विषय-वासना पर नियंत्रण न रखना, अपनी मुसीबत बढ़ा लेना है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य का पालन ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। कृत्रिम साधनों का प्रयोग करना देश और समाज के प्रति ही नहीं वरन् अपने जीवन के प्रति भी द्रोह करना है।

मार्गशीर्ष कृष्णा ६

कुत्ते जिस घर में हिल जाते हैं, बार-बार आते हैं, उसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार जिसके हृदय में हिल जाते हैं, बार-बार आते रहते हैं। महात्मा पुरुष उनके आने का द्वार ही बंद कर लेते हैं।

* * * *

भक्त के लिए परमात्मा का आकर्षण वैसा ही है जैसे लोहे के लिए चुम्बक का।

* * * *

जो पुरुष केवल अपना ही स्वार्थ देखता है वह वास्तव में अपने ही स्वार्थ का नाश करता है। जो परोपकार करता है वह आत्मोपकार करता है।

* * * *

तुम स्वयं सत्कार्य नहीं कर सकते तो सत्कार्य करने वाले की प्रशंसा तो कर सकते हो ! उसे उत्साह दे सकते हो, धन्यवाद दे सकते हो ! इतना करके भी अपना कल्याण कर सकते हो।

* * * *

संसार में 'लेने' में आनन्द मानने वाले बहुत हैं तो 'देने' में आनंद मानने वाले भी हैं। वह धन्य हैं जो दूसरों की रक्षा के लिए अपने प्राण भी दे देते हैं।

मार्गशीर्ष कृष्णा ६

परिग्रह, आत्मा पर लदा हुआ वह बोझ है जो आत्मा को उन्नत नहीं होने देता और मोक्ष की ओर नहीं जाने देता।

*   *   *   *

इन्द्रियों के दमन करने का अर्थ इन्द्रियों का नाश करना नहीं। जैसे घोड़े को मनचाहा न दौड़ने देकर लगाम द्वारा काबू में रक्खा जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियों को विषयों की ओर न जाने देना इन्द्रियदमन कहलाता है।

*   *   *   *

आत्मा और शरीर को तलवार और म्यान की तरह समझ लो तो फिर क्या चाहिए? समझ लो कि आत्मविजय की चाबी तुम्हारे हाथ में आगई है।

*   *   *   *

कैसी ही आपत्ति क्यों न आ पड़े, धैर्यपूर्वक उसे सहन करने और उस समय भी धर्म की रक्षा करने में ही सच्ची वीरता है।

*   *   *   *

नौकरों-चाकरों से प्रेमपूर्वक काम लेना एक बात है और लाल-लाल आँख दिखलाकर काम लेना दूसरी बात है। प्रेमपूर्वक काम लेने से स्वामी और सेवक-दोनों को सन्तोष रहता है।

मार्गशीर्ष कृष्णा ७

सांसारिक पदार्थों का संग्रह कर रखने वाला—उनके प्रति ममता रखने वाला—उन्हीं पदार्थों को महत्त्व देता है, वह आत्मा की और सद्गुणों की अवहेलना करता है। वह सन्मान भी उसी का करता है जिसके अधिकार में सांसारिक पदार्थों की प्रचुरता होती है।

* * * *

तुम सम्पत्ति को अपनी ही मानकर दबा बैठोगे तो लोग तुमसे वह सम्पत्ति छीनने का प्रयत्न करेंगे। अगर गेंद की तरह सम्पत्ति का आदान-प्रदान करते रहोगे तो जैसे फैंकी हुई गेंद लौट कर फैंकने वाले के पास आती है, उसी तरह दूसरे को देते रहने पर—त्याग करने पर—सम्पत्ति लौट-लौट कर तुम्हारे पास आएगी।

* * * *

चिउँटी, हाथी के बराबर नहीं चल सकती तो क्या चलना छोड़ बैठती है? अगर तुम दूसरे की बराबर प्रगति नहीं कर सकते तो हर्ज नहीं। अपनी शक्ति के अनुसार ही चलो, पर चलते चलो। एक दिन मंजिल तय हो ही जाएगी।

* * * *

बार-बार ठोकर खाकर तो मनुष्य को सावधान हो ही जाना चाहिए। ठोकरें खाने के बाद भी जो सावधान नहीं होता, वह बड़ा मूर्ख है।

मार्गशीर्ष कृष्णा ८

जिसका हृदय सत्य के अभेद्य कवच से अवगुंठित है, मुँह फाड़े खड़ी मौत की विकरालता उसका क्या बिगाड़ सकती है!

जहाँ परिग्रह है वहाँ आलस्य है, अकर्मण्यता है। परिग्रही व्यक्ति दूसरों के श्रम से लाभ उठाने की ही घात में रहता है। इसीलिए वह आलसी और विलासी हो जाता है।

पुण्य के फल-स्वरूप सम्पत्ति प्राप्त होती है। वह इस बात की परीक्षा के लिए है कि इसके हृदय में मोक्ष की चाह है या नहीं? जिसे मोक्ष की कामना होगी वह प्राप्त सम्पत्ति को भी त्याग देगा।

(आनन्द श्रावक के समान) है कोई ऐसा धर्मात्मा गृहस्थ, जो वस्तु की लागत और दुकान का खर्च लेकर ही, शुद्ध समाजसेवा की भावना से व्यापार करता हो? ऐसा गृहस्थ लोक में आदरणीय होगा और वह जिस धर्म का अनुयायी होगा उसकी प्रशंसा भी कराएगा।

मार्गशीर्ष कृष्णा ६

मनुष्य अपने हृदय में बुरे विचारों और दुष्कर्मों की आँधी लाकर आत्मा को चारों ओर से धूल से आच्छादित न कर ले तो आत्मा उसे सर्वदा सत्य-मार्ग ही दिखलाएगा।

* * *

परिग्रह समस्त दुखों का कारण है। वह परिग्रहवान् को भी दुख में डालता है और दूसरों को भी। परिग्रह से व्यक्तित्व की भी हानि होती है और समाज की भी। यह आध्यात्मिक हानि का भी कारण है और शारीरिक हानि का भी।

* * * *

सम्पत्ति के लिए जीवन मत हारो। जीवन को सम्पत्ति के लिए मत समझो। सम्पत्ति पर जीवन निछावर मत करो। सम्पत्ति के लिए धर्म को धता मत बताओ। धन को बड़ा मत मानो, धर्म को बड़ा समझो। दोनों में से एक के जाने का अवसर आवे तो धर्म को मत जाने दो। धर्मरहित सम्पत्ति घोर विपत्ति है।

मार्गशीर्ष कृष्णा १०

जिन तोपों और मशीनगनों के नाम मात्र से लोग काँप उठते हैं, जिनकी गड़गड़ाहट की भयंकर ध्वनि से लोगों के रौंगटे खड़े हो जाते हैं और गर्भवती स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, वही तोपें और मशीनगनें, सत्य का बल प्राप्त करने वाले आत्मबली का एक रोम भी नहीं हिला सकती।

परिग्रहशील व्यक्ति धर्मकार्य नहीं कर सकता। जो जितना अधिक परिग्रही है वह धर्म से उतना ही दूर है। वह लोक-दिखावे के लिए, भले ही धर्माचरण करे परन्तु उसमें पूर्ण धार्मिकता नहीं हो सकती।

जो सादगी से जितना दूर है और फैशन को अपनाता है वह उतना ही अधिक दूसरों को दुःख में डालता है।

जो आभूषण सुख और सिंगार की सामग्री समझे जाते हैं, क्या उनके कारण कभी जीवन नहीं खोना पड़ता? क्या उनकी रक्षा के लिए चिन्तित नहीं रहना पड़ता? क्या वे शरीर के लिए भार नहीं हैं?

मार्गशीर्ष कृष्णा ११

संसार के समस्त पापकार्यों और समस्त अनर्थों के मूल में परिग्रह की भावना ही दिखाई देती है। इस प्रकार परिग्रह सब पापों का मूल और सब अनर्थों की खान है।

* *

सम्पत्ति कितनी ही अधिक क्यों न हो, मरने के समय तो त्यागनी ही पड़ेगी। जिसके पास ज्यादा सम्पत्ति है उसे मरने के समय उतना ही ज्यादा दुख होगा। तो फिर पहले से ही उसका त्याग क्यों न कर दिया जाय ताकि मृत्यु के समय और मृत्यु के बाद भी आनन्द रहे ?

* * *

सम्पन्न लोग अपनी आवश्यकताएँ घटा दें, उतना ही अन्न-वस्त्र आदि काम में लें जितना अनिवार्य है और ऐसी वस्तुओं का निरर्थक संग्रह न कर रक्खें तो दूसरों को इनके लिए कष्ट ही क्यों उठाना पड़े ?

* * * *

बहुतेरे लोग वस्त्रों को भी सिंगार का साधन समझ बैठे हैं। इस कारण वे अधिक और मूल्यवान् वस्त्र पहनते हैं और उनका संग्रह कर रखते हैं। जब कि बहुत से लोग नंगे बदन कड़ाके की सर्दी में ठिठुरते-ठिठुरते प्राण दे देते हैं।

मार्गशीर्ष कृष्णा १२

भोजन के साथ मन, वाणी और स्वभाव का पूर्ण सम्बंध है। जो जैसा भोजन करता है उसके मन, वाणी और स्वभाव में वैसा ही सद्गुण या दुर्गुण आ जाता है। कहावत है— 'जैसा आहार वैसा विचार, उच्चार और व्यवहार।' इस प्रकार आहार के विषय में संयम रखना आवश्यक है और ऐसे आहार से बचते रहना भी आवश्यक है जो विकृति-जनक हो, जिसके लिये महान् पाप हुआ या होता है और जो लोक में निन्द्य माना जाता है।

* * * *

एक ओर कुछ लोग राजसी सुख-सामग्री भोगते हैं और दूसरी ओर बहुत-से लोग अन्न के बिना त्राहि-त्राहि करते हैं। इस प्रकार संसार में बड़ी विषमता फैली हुई है, और इस विषमता का कारण है— कुछ लोगों का अपनी आवश्यकताएँ अत्यधिक बढ़ा लेना।

* * * *

जो लोग जीवन के लिये आवश्यक अन्न वस्त्र आदि के न मिलने से या कम मिलने से कष्ट पा रहे हैं, उनके लिये वही उत्तरदायी हैं जो ऐसी चीजों का दुरुपयोग करते हैं, अधिक उपयोग करते हैं, या संग्रह कर रखते हैं।

मार्गशीर्ष कृष्णा १३

जब कोई मनुष्य सत्य से विरुद्ध कार्य करना चाहता है तो उसकी आत्मा भीतर ही भीतर संकेत करती है कि यह कार्य बुरा है। यह कार्य करना उचित और कल्याणकर नहीं है। भले ही पाप-पुंज से आच्छादित हृदय तक आत्मा की यह शब्दहीन पुकार न पहुँचे, परन्तु कैसा भी घोर पापी मनुष्य क्यों न हो, उसे इस मधुर संदेश का आभास मिल ही जाता है।

* * * *

पर पदार्थों का संयोग होने से पहले आत्मा को जो शांति और स्वतंत्रता प्राप्त रहती है, पदार्थों का संयोग होने पर वह चली जाती है। फिर भी कितने अचरज की बात है कि लोग शान्ति और स्वतंत्रता पाने के लिए अधिक से अधिक वस्तुएँ जुटाने में ही जुटे रहते हैं।

* * * *

परिग्रह को दुःख तथा बन्धन का कारण मानकर इच्छा-परिमाण का व्रत स्वीकार करने वाला विस्तीर्ण मर्यादा नहीं रखता, संकुचित मर्यादा रखता है; क्योंकि उसका ध्येय परिग्रह को सर्वथा त्यागना है।

मार्गशीर्ष कृष्णा १४

जो त्रिकाल में शाश्वत है, जिसे आत्मा निष्पक्ष भाव से अपनावे, जिसके पूर्ण रूप से हृदय में स्थित हो जाने पर भय, ग्लानि, अहंकार, मोह, दंभ, ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि कुत्सित भाव निश्शेष हो जावें, जिसके प्राप्त होने पर आत्मा को वास्तविक शान्ति प्राप्त हो, वह सत्य है।

* * * *

मनुष्य कुसंग में पड़ कर बुरी बातें अपने हृदय में न भर ले और जन्म से ही सत्य के वातावरण में पले तो सम्भवतः वह असत्याचरण का विचार भी न करे। यदि बालक के सामने सत्य का ही आचरण किया जाय और सत्य का उपदेश न भी दिया जाय तो वह सत्य का ही अनुगामी बनेगा।

* * *

जो जितना परिग्रही है वह उतना ही निर्दय और कठोर हृदय है। जो निर्दय और कठोर नहीं है वह दूसरों को दुखी देख कर भी अपने पास अनावश्यक संग्रह कैसे रख सकता है? कोई दुखी है तो रहे, परिग्रही तो यही चाहेगा कि मेरे काम में बाधा खड़ी न हो।

मार्गशीर्ष कृष्णा १५

सत्य विचार, सत्य भाषण और सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य ही उत्कृष्ट से उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है। जिस मनुष्य में सत्य नहीं है समझना चाहिए कि उसकी देह निर्जीव काष्ठ-पाषाण की तरह धर्म के लिए अनुपयोगी है।

* * * *

असत्याचरण से मनुष्य को प्रकट में चाहे कुछ लाभ दिखाई देता हो, परन्तु वह क्षणिक और अस्थायी है। इस की ओट में ऐसी हानियां छिपी रहती हैं जो उस समय दिखाई नहीं देती।

* *

क्या सचमुच ही शरीर आत्मा का है? ऐसा है तो आत्मा की इच्छा के विरुद्ध शरीर में रोग और बुढ़ापा क्यों आता है?

* * *

जिस शरीर को आत्मा अपना मानता है, उसी शरीर में रहने वाले कीटाणु भी अपना मानते हैं। वास्तव में वह किसका है?

मार्गशीर्ष शुक्ला १

लोभ के वश होकर सत्य-असत्य का विचार न करना, जाली-दस्तावेज बनाना और गरीबों का गला काटना ही लोगों ने व्यापार समझ लिया है। वे यह नहीं सोचते कि इस तरह द्रव्योपार्जन करने वाले कितने आनन्द उड़ा सकते हैं ? और भविष्य में उसका क्या परिणाम होगा ?

*　　*　　*　　*

ज्ञान संसारबन्धन से मुक्त करने वाला है, लेकिन जब उसके कारण किंचित् भी अभिमान हो उठता है तो वह भी परिग्रह बन जाता है और अधोगति का कारण होता है।

*　　*　　*　　*

नाभि में सुगन्ध देने वाली किस्तूरी होने पर जैसे मृग घास-फूस को सूंघ-सूंघ कर उसमें सुगन्ध खोजता फिरता है, उसी प्रकार आत्मा अपने भीतर के सुख को भूल कर दृश्यमान बाह्य जगत् में सुख की खोज करता फिरता है।

*

जीव और पुद्गल में साम्य नहीं है, फिर भी अज्ञानी जीव पुद्गलों से स्नेह करता है, उन्हें स्व-मय मानता है और ऐसा ही व्यवहार करता है। इसी कारण आत्मा अपने को भूल कर जड़-सा बन गया है

मार्गशीर्ष शुक्ला २

झूठ सब पापों से बढ़कर पाप है और सत्य सब धर्मों से बढ़कर धर्म है। अन्य पाप विशेषतः सत्य को न समझने के कारण होते हैं।

* * *

आत्मबल किसी भी बल से कम नहीं है। बल्कि इस बल के सामने भौतिक बल तुच्छ, हेय और नगण्य है।

* * *

आत्मा बुद्धि पर शासन नहीं कर सकता, इसलिए बुद्धि से उसे अच्छी सम्मति नहीं मिलती, वरन् मन की इच्छा के अनुसार उसे सम्मति मिलती है। मन इन्द्रियानुगामी हो जाता है अतः वह इन्द्रियों की रुचि के अनुसार इच्छा करता है। इस प्रकार इन्द्रिय, मन और बुद्धि के आधीन होकर आत्मा विषयों में ही सुख मानने लगता है।

संसार में ऐसा एक भी व्यक्ति मिलना कठिन है जिसकी इच्छा, इच्छानुसार पदार्थ मिलने से नष्ट हो गई हो। पदार्थों का मिलना तो इच्छा वृद्धि का कारण है। ठीक उसी प्रकार जैसे ईंधन आग बढ़ाने का कारण।

मार्गशीर्ष शुक्ला ३

कितने ही लोगों ने भ्रान्त-धारणा बना रक्खी है कि झूठ का आसरा लिये बिना काम नहीं चल सकता। लेकिन सत्य बोलने की प्रतिज्ञा लेने वाला निर्विघ्न अपना व्यवहार चला सकता है और झूठ बोलने की प्रतिज्ञा लेने वाले को कुछ घंटे व्यतीत करना कठिन हो जाएगा।

*　　　*　　　*　　　*

जो रक्खी हुई धरोहर को न दे और जो बिना रक्खे मांगे, वह दोनों ही चोर के समान हैं।

*　　　*　　　*　　　*

दोष की सत्यता पर विचार किये बिना ही किसी को दोषी प्रकट करना अत्यन्त अनुचित है। कभी-कभी तो ऐसा करना घोर से घोर पाप बन जाता है।

*　　　*　　　*　　　*

आज अधिकांश लोग जीभ पर अंकुश रखने का प्रयत्न शायद ही करते हैं। इसी कारण किसी से दोष हुआ हो या न हुआ हो, उस पर हठपूर्वक दोषारोपण कर दिया जाता है।

*　　　*　　　*　　　*

तलवार का घाव अच्छा हो सकता है लेकिन झूठे कलंक का भयंकर घाव उपाय करने पर भी कठिनाई से ही भर सकता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला ४

सत्याग्रह के बल की तुलना और कोई बल नहीं कर सकता। इस बल के सामने मनुष्य-शक्ति तो क्या देव-शक्ति भी हार मान जाती है।

*   *   *   *

अत्याचार के द्वारा एक बार अत्याचार मिटा हुआ मालूम होता है, लेकिन वह निर्मूल नहीं होता; वह समय पाकर भयंकर रूप से ज्वालामुखी की तरह फट पड़ता है और उसकी लपटें प्रतिपक्षी का विनाश करने के लिए पहले की अपेक्षा भी अधिक उग्रता से लपलपाने लगती हैं।

*   *   *   *

सत्पुरुष के प्रभाव से अग्नि शीतल हो जाती है, विष अमृत बन जाता है और अस्त्र-शस्त्र फूल-से कोमल हो जाते हैं। जब इतना हो जाता है तो क्रूर प्राणियों की क्रूरता दूर होने में सन्देह ही क्या है?

*   *   *   *

प्राणों पर घोर संकट आ पड़ने पर भी आत्मबली धैर्य से विचलित नहीं होता और प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण त्याग देता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला ५

जन्म-मरण करते-करते आत्मा ने अनन्त काल व्यतीत किया है, फिर भी उसे शान्ति नहीं मिली। वास्तव में जब तक आत्मा चंचलता में है, स्थिरता नहीं आई है, तब तक आत्मशान्ति नहीं मिल सकती।

* * * *

यह शरीर तो एक दिन छूटने को ही है। सभी को मरना है, परन्तु वृक्ष उखड़ जाने पर पक्षी के समान ऊर्ध्वगति करना ठीक है या बन्दर के समान पतित होना ठीक है?

* * * *

सुन्दर महल में रहने पर भी और मिष्ट भोजन करने पर भी मन व्याकुल हुआ तो दुःख उत्पन्न होता है। इसके विपरीत घास की झौंपड़ी में रहते हुए भी और रूखा-सूखा भोजन करने पर भी मन निराकुल हुआ तो सुख उत्पन्न होता है।

* * * *

यों तो तुम गाय को नहीं मारोगे परन्तु तुम्हारे सामने गाय के चमड़े के बने सुन्दर और मुलायम बूट रक्खे जाएँ अथवा गाय की चर्बी वाले कपड़े तुम्हें दिये जाएँ तो उनका उपयोग तो नहीं करोगे?

मार्गशीर्ष शुक्ला ६

परमात्मा के भजन का सहारा लेकर मन को एकाग्र करने से चित्त की चंचलता दूर होगी।

* * * *

धन को साध्य मानने के बदले साधन माना जाय और लोकहित में उसका सद्व्यय किया जाय तो कहा जा सकता है कि धन का सदुपयोग हुआ है। साधनसम्पन्न होकर भी अगर आप वस्त्रविहीन को ठंड से ठिठुरता देखकर और भूख-प्यास से कष्ट पाते देखकर भी उसकी सहायता नहीं करते तो इससे आपकी कृपणता ही प्रकट होती है।

* * * *

जिसका मन रजोगुण और तमोगुण से अतीत हो जाय, या त्रिगुणातीत हो जाय, समझना चाहिये कि वह सच्चा तपस्वी है और उसका मन निर्मल है। ऐसे तपस्वी का मन फलता है।

* * * *

अगर हम आलसी होकर बैठे रहेंगे तो आत्मविकास कैसे कर सकेंगे? साथ ही एक दम छलांग मार कर ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करेंगे तो नीचे गिरने का भय है। अतएव मध्यम मार्ग का अवलम्बन करके क्रमपूर्वक आत्मविकास करना ही श्रेयस्कर है।

मार्गशीर्ष शुक्ला ६

चित्त तो चंचल है, चंचल था और चंचल रहेगा, परन्तु योग की क्रिया द्वारा चंचल चित्त भी स्थिर किया जा सकता है। अगर उसे पूरी तरह स्थिर न कर सको तो कम से कम इतना अवश्य करो कि चित्त को बुरी बातों की ओर मत जाने दो।

* * * *

बालक कुसंगति में जाता हो तो उसे रोकना पड़ता है, इसी प्रकार यह मन खराब संगति में न चला जाय, इस बात की खूब सावधानी रखनी चाहिए।

*

घर का कचरा साफ करने वाली स्त्री यह नहीं सोचती कि मैं किसी पर ऐहसान या उपकार कर रही हूँ। इसी प्रकार साधु को भी धर्मकथा करके ऐहसान नहीं करना चाहिए, न अभिमान ही करना चाहिए, साधु को निर्जरा के निमित्त ही सब कार्य करना चाहिए।

* * * *

आत्मकल्याण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है। तुम अपने बालकों को शान्ति पहुँचाना चाहते हो तो उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान देना उचित है।

मार्गशीर्ष शुक्ला १०

परमात्मा का स्मरण करने के लिए किसी खास समय की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। इसका अभ्यास तो श्वासोच्छ्वास की तरह हो जाता है। जब परमात्मा के स्मरण का अभ्यास श्वासोच्छ्वास लेने और छोड़ने के अभ्यास की तरह स्वाभाविक बन जाय तो समझना चाहिए कि परमात्मा का भजन स्वाभाविक रूप से हो रहा है।

* * * *

परमात्मा का नाम न लेने पर भी परमात्मा का स्मरण करने के अनेक उपायों में से एक उपाय है—प्रामाणिकतापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करना।

* * * *

कोई पुरुष चाहे जैसा हो, कोई स्त्री कैसी भी हो, उसकी निन्दा करने से हमें क्या लाभ होगा? हम यही क्यों न देखें कि हम कैसे हैं? दूसरे के दोष न देखकर अपने ही दोषों को दूर करने में भलाई है।

* * * *

अगर तुम्हारा कोई पड़ोसी दुःखी है तो इसमें तुम्हारा भी दोष है।

मार्गशीर्ष शुक्ला ११

जान-बूझ कर बुरे काम करने वाले के हृदय की आँख खुली है, यह कैसे कहा जा सकता है ? वह तो देखते हुए भी अंधा है। हाँ, जो हृदय की आँख खुली रखकर सत्कार्य में प्रवृत्ति करता है वह शिव अर्थात कल्याणकारी बन जाता है।

* * * *

संसार में परिवर्त्तन न हो तो उसका अस्तित्व ही न रहे। बालक जन्म लेने के बाद यदि बालक ही बना रहे, उसकी उम्र में तनिक भी परिवर्त्तन न हो तो जीवन की मर्यादा कैसे कायम रह सकती है ?

* * * *

सदैव विवेक-बुद्धि से काम लेने वाले के लिए उपदेश की आवश्यकता ही नहीं रहती। उसका विवेक ही उसके लिए बड़ा उपदेशक है।

* * * *

अनादि काल से आत्मा कर्मों के साथ और कर्म आत्मा के साथ बद्ध हैं फिर भी प्रयोग द्वारा जैसे दूध में से घी अलग किया जा सकता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ द्वारा आत्मा और कर्मों का भी पृथक्करण हो सकता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला १२

जितनी अधिक सादगी होगी, पाप उतना ही कम होगा। सादगी में ही शील का वास है। विलासिता बढ़ाने वाली सामग्री महापाप का कारण है। वह विलासी को भी भ्रष्ट करती है और दूसरों को भी।

* * * *

आपके घर में विधवा बहिनें शीलदेवियाँ हैं। उनका आदर करो। उन्हें पूज्य मानो। उन्हें दुखदायी शब्द मत कहो। वह देवियाँ पवित्र हैं, पावन है, मंगलरूप हैं। उनके शकुन अच्छे हैं। शील की मूर्ति क्या कभी अमंगलमयी हो सकती है?

* * * *

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मंगलमयी और शीलवती को अमंगला मान लिया है। यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है

* * * *

सम्पूर्ण श्रद्धा से कार्य में सफलता मिल जाती है और अविश्वासी को सफलता इसलिए नहीं मिलती कि उसका चित्त डाँवाडोल रहता है। उसके चित्त की अस्थिरता ही उसकी सफलता में बाधक है।

मार्गशीर्ष शुक्ला १३

वह प्रजा नपुंसक है, जो अन्याय को चुपचाप सहन कर लेती है और उसके विरुद्ध चूं तक नहीं करती। ऐसी प्रजा अपना ही नाश नहीं करती परन्तु उस राजा के नाश का भी कारण बन जाती है, जिसकी वह प्रजा है।

*   *   *   *

जो मनुष्य अपना दोष स्वीकार कर लेता है, उसकी आत्मा बहुत ऊँची चढ़ जाती है।

*   *   *

जो धर्म की रक्षा करना चाहता है, उसे वीर बनना पड़ेगा। वीरता के बिना धर्म की रक्षा नहीं हो सकती।

*   *   *   *

जब तक गरीब आपको प्यारे नहीं लगेंगे तब तक आप ईश्वर को प्यारे नहीं लगेंगे।

*   *   *   *

मतांन्ध होना मूर्खता का लक्षण है। विवेक के साथ विचार करने में ही मानवीय मस्तिष्क की शोभा है।

मार्गशीर्ष शुक्ला १४

संग्रहशीलता ने समाज में वैषम्य का विष पैदा कर दिया है और वैषम्य ने समाज की शान्ति का सर्वनाश कर दिया है।

* * * *

अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओं पर से ममत्व हटा लो। 'यह मेरा है' इस बुद्धि से ही पाप की उत्पत्ति होती है। 'इदं न मम' अर्थात् यह मेरा नहीं है, ऐसा कहकर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने से अहंकार का विलय हो जायगा और आत्मा में अपूर्व आभा का उदय होगा।

* * * *

अगर साँप और सिंह को अपनी सफ़ाई पेश करने की योग्यता मिली होती तो वे निडर होकर तेजस्वी भाषा में कह सकते थे—'मनुष्यो! हम जितने क्रूर नहीं उतने क्रूर तुम हो। तुम्हारी क्रूरता के आगे हमारी क्रूरता किसी गिनती में ही नहीं है।'

* * * *

माता अपने बालक के लिए खाद्य-सामग्री संचित कर रखती है और समय पर उसे खिलाकर प्रसन्न होती है। वैश्य का संग्रह भी ऐसा ही होना चाहिए। देश की प्रजा उसके लिए बालक के समान है।

मार्गशीर्ष शुक्ला १५

किसी भी दूसरे की शक्ति पर निर्भर मत बनो। समझ लो, तुम्हारी एक मुट्ठी में स्वर्ग है, दूसरी में नरक है। तुम्हारी एक भुजा में अनन्त संसार है और दूसरी में अनन्त मंगल-मयी मुक्ति है। तुम्हारी एक दृष्टि में घोर पाप है और दूसरी दृष्टि में पुण्य का अक्षय भंडार भरा है। तुम निसर्ग की समस्त शक्तियों के स्वामी हो, कोई भी शक्ति तुम्हारी स्वामिनी नहीं है। तुम भाग्य के खिलौना नहीं हो वरन् भाग्य के निर्माता हो। आज का तुम्हारा पुरुषार्थ कल भाग्य बन कर दास की भाँति-सहायक होगा।

*   *   *   *

इसलिए हे मानव! कायरता छोड़ दे। अपने ऊपर भरोसा रख। तू सब कुछ है, दूसरा कुछ नहीं है। तेरी क्षमता अगाध है। तेरी शक्ति असीम है। तू समर्थ है। तू विधाता है। तू ब्रह्मा है। तू शंकर है। तू महावीर है। तू बुद्ध है।

पौष कृष्णा १

जिस शिक्षा की बदौलत गरीबों के प्रति स्नेह, सहानुभूति और करुणा का भाव जागृत होता है, जिससे देश का कल्याण होता है, और विश्वबन्धुता की दिव्य ज्योति अन्तःकरण में जाग उठती है, वही सच्ची शिक्षा है।

* * * *

स्त्री, पुरुष का आधा अंग है। क्या सम्भव है कि किसी का आधा अंग बलिष्ठ और आधा अंग निर्बल हो? जिसका आधा अंग निर्बल होगा उसका पूरा अंग निर्बल होगा।

* * * *

स्त्रियाँ जग-जननी का अवतार हैं। इन्हीं की कूँख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुषसमाज पर स्त्री-समाज का बड़ा उपकार है। उस उपकार को भूल जाना घोर कृतघ्नता है।

* * * *

भवितव्यता का सिद्धान्त आप में पांच ही नहीं है; वरन् वह मानव-समाज की उद्योगशीलता में बड़ा रोड़ा है और लोगों को निकम्मा एवं आलसी बनाने वाला है।

पौष कृष्णा २

अहिंसा कायर बनाती है या कायरों का शस्त्र है, यह बात वही कह सकता है जिसने अहिंसा का स्वरूप और सामर्थ्य नहीं समझ पाया है। अहिंसा का व्रत वीरशिरोमणी ही धारण कर सकते हैं। जो कायर है वह अहिंसा को लजावेगा—वह अहिंसक बन नहीं सकता। कायर अपने को अहिंसक कहे तो कौन उसकी जीभ पकड़ सकता है ? पर वास्तव में वह सच्चा अहिंसक नहीं है। यों तो अहिंसावादी एक चिउँटी के भी व्यर्थ प्राण-हरण करने में थर्रा उठेगा, क्योंकि वह संकल्पजा हिंसा है। पर जब नीति या धर्म खतरे में होगा, न्याय का तकाजा होगा और संग्राम में कूदना अनिवार्य हो जायगा तब वह हजारों मनुष्यों के सिर उतार लेने से भी न चूकेगा।

* * * *

कायरता से तामसी अहिंसा उत्पन्न होती है। अपनी स्त्री पर अत्याचार होते देखकर जो क्षति पहुंचने या अपने मर जाने के डर से चुप्पी साध कर बैठ जाता है, अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार नहीं करता, लोगों के टोकने पर जो अपने को दयालु प्रकट करता है, ऐसा नपुंसक तामसी अहिंसा वाला है। यह निकृष्ट अहिंसा है। इस अहिंसा की आड़ लेने वाला व्यक्ति संसार के लिए भार है।

पौष कृष्णा ३

जब मनुष्य मदिरा की तरह असत्य का सेवन आरम्भ करता है, तब सोचता है कि मैं इस पर कब्जा रक्खूँगा। लेकिन कुछ ही दिनों में वह असत्य उसके जीवन का मूल मन्त्र बन जाता है।

* * * *

जीवित रहना अच्छा है मगर धर्म के साथ। कदाचित् धर्म जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो उससे पहले जीवन का समाप्त हो जाना ही श्रेष्ठ है।

* * * *

सत्य-मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन भी है और फूलों की सेज पर सोने के समान सरल भी है।

* * * *

पतिव्रता स्त्री के नेत्रों में वह शक्ति होती है कि वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृढ़ दृष्टि से देख ले तो उसका शरीर वज्रमय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले तो भस्म हो जाय।

पौष कृष्णा ४

यों तो संसार असार कहलाता है पर ज्ञानी पुरुष इस असार संसार में से भी सम्यक् सार खोज निकालते हैं । संसार में किंचित् भी सार न होता तो जीव मोक्ष कैसे प्राप्त कर पाते ? अज्ञान का नाश होने पर संसार में से सार निकाला जा सकता है ।

*   *   *   *

तुमने दूसरे अनेक रसों का आस्वादन किया होगा, एक बार शास्त्रों के रस को भी तो चख देखो ! शास्त्र का रस चखने के बाद तुम्हें संसार के सभी रस फीके जान पड़ेंगे ।

*   *   *

एक ओर से मन को अप्रशस्त में जाने से रोको और दूसरी ओर उसे परमात्मा के ध्यान में पिरोते जाओ । ऐसा करने पर मन वश में किया जा सकेगा ।

*   *   *   *

तुम्हारी जो वाणी दूसरे के हृदय को चोट पहुँचाती है, वह चाहे वास्तविक हो, फिर भी सत्य नहीं है । उसकी गणना असत्य में ही की गई है ।

पौष कृष्णा ५

तलवार की शक्ति राक्षसों के लिए काम में आती है। दैवी प्रकृति वाली प्रजा में प्रेम ही अपूर्व प्रभाव डाल देता है।

* * * *

लक्ष्मी प्राप्त करके, ऋद्धि, सम्पत्ति और अधिकार पा करके भी जो दिव्य ज्ञान रूपी तृतीय नेत्र प्राप्त कर शिव-रूप न बना, उसकी लक्ष्मी बिल्कुल व्यर्थ है, उसका अधिकार धिक्कार योग्य है और उसकी समस्त ऋद्धि-सम्पत्ति उसी का नाश करने वाली है।

* * * *

अगर आपके पास धन है तो उसे परोपकार में लगाओ। धन आपके साथ जाने वाला नहीं है। धन के मोह में मत पड़ो।

* * * *

धर्म की नींव नीति है। नीति के बिना धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। नीति को भंग करने वाला, धर्म को नहीं दिपा सकता।

* * * *

सुन्दर से सुन्दर विचार भी जीवन में परिणत किये बिना लाभदायक नहीं हो सकता।

पौष कृष्णा ६

अर्थ को ही अपने जीवन की क्षुद्र सीमा मत बनाओ। अर्थ के घेरे से बाहर निकलो और देखो, तुम्हारा इतिहास कितना उज्ज्वल है, कितना तेजस्वी है, कितना वीरतापूर्ण है।

* * * *

जिस 'जैनधर्म' के नाम में ही विजय का संगीत सुनाई दे रहा है, जिसका आराध्य सिंह से अंकित 'महावीर' है, जिसका धर्म विजयिनी शक्ति का स्रोत है, उसे कायरता शोभा नहीं देती। उसे वीर होना चाहिये।

* * * *

मनुष्य की प्रतिष्ठा उसके सद्‌गुणों पर ही अवलंबित रहनी चाहिये। धन से प्रतिष्ठा का दिखावा करना मानवीय सद्‌गुणों के दिवालियापन की घोषणा करने के समान है।

* * * *

जिसके मुखमण्डल पर ब्रह्मचर्य का तेज विराजमान होगा उसके सामने आभूषणों की आभा फीकी पड़ जायगी। चेहरे की सौम्यता बलात् उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न किये बिना न रहेगी।

पौष कृष्णा ७

संसार के विभिन्न पंथ या सम्प्रदाय सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु ज्ञान की अपूर्णता के कारण अखण्ड सत्य को न पाकर सत्य का एक अंश ही उन्हें उपलब्ध होता है। सत्य के एक अंश को ही सम्पूर्ण सत्य मान लेने से धार्मिक विवाद खड़ा हो जाता है।

सभी धर्म वाले अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं। वह एक दूसरे को झूठा ठहराते हैं, इसी कारण वे स्वयं झूठे ठहरते हैं। सब इकट्ठे होकर, न्यायबुद्धि से, पक्षपात छोड़कर धर्म का निर्णय करें तो सम्पूर्ण धर्म का सच्चा स्वरूप मालूम हो सकता है।

* * * *

स्याद्वाद ऐसी मशीन है जिसमें सत्य के खण्ड-खण्ड मिल-कर अखण्ड अर्थात् परिपूर्ण सत्य ढाला जाता है। स्याद्वाद का सम्यक् प्रकार से उपयोग किया जाय तो मिथ्या प्रतीत होने वाला दृष्टिकोण भी सत्य प्रतीत होने लगता है। जगत् के धार्मिक और दार्शनिक दुराग्रहों को समाप्त करने के लिए स्याद्वाद के समान और कोई उपाय नहीं है।

पौष कृष्णा ८

जो आत्माराम में रमण करता है, जिसे सच्चिदानन्द पर परिपूर्ण श्रद्धाभाव उत्पन्न हो चुका है, वह मरने से नहीं डरता; क्योंकि वह समझता है—मेरी मृत्यु असम्भव है। मैं वह हूँ, जहाँ किसी भी भौतिक शक्ति का प्रवेश नहीं हो सकता।

*   *   *   *

जिस मनुष्य का आत्मविश्वास प्रगाढ़ हो जाता है, उसके लिए ऐसा कोई काम नहीं रहता, जिसे वह कर न सकता हो। लाखों-करोड़ों रुपया खर्च करने पर भी जो काम बखूबी नहीं होता, उसे आत्मबली बात की बात में कर डालता है। आत्मबलशाली के सामने समस्त शक्तियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं।

*   *   *   *

जैसे आप जाल में फँसने वाली मछलियों पर करुणा करते हैं उसी प्रकार ज्ञानी जन सारे संसार पर करुणा करते हैं। वह कहते हैं—ऐ मनुष्यो! कुछ आत्मकल्याण का काम करो। खाने-पीने पर अंकुश रक्खो। दूसरों को आनन्द पहुँचाओ। ऐसा करने से तुम्हारा मनोरथ जल्दी पूरा होगा।

*   *   *   *

भोजन करने वाले को थोड़ा-बहुत भजन भी करना चाहिये।

पौष कृष्णा ६

अज्ञान पुरुष को जिन पदार्थों के वियोग से मर्मवेधी पीड़ा पहुँचती है, ज्ञानी जन को उनका वियोग साधारण-सी घटना प्रतीत होती है। ज्ञानवान् पुरुष संयोग को वियोग का पूर्वरूप मानता है। वह संयोग के समय हर्ष-विभोर नहीं होता और वियोग के समय विषाद से मलीन नहीं होता। दोनों अवस्थाओं में वह मध्यस्थभाव रखता है। सुख की कुंजी उसे हाथ लग गई है, इसलिए दुःख उससे दूर ही दूर रहते हैं।

* * * *

'चाहिए' के चंगुल में फँसकर मनुष्य बेतहाशा भाग-दौड़ लगा रहा है। कभी किसी क्षण शान्ति नहीं, संतोष नहीं, निराकुलता नहीं। भला इस दौड़-धूप में सुख कैसे मिल सकता है?

* * * *

अपनी परछाई के पीछे कोई कितना ही दौड़े, वह आगे-आगे दौड़ती रहेगी, पकड़ में नहीं आ सकेगी। इसी प्रकार तृष्णा की पूर्ति के लिए कोई कितना ही उपाय करे मगर वह पूरी नहीं होगी।

* * * *

एक व्यक्ति जब तक अपने ही सुख को सुख मानता रहेगा, जब तक उसमें दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानने की संवेदना जागृत न होगी, तब तक उसके जीवन का विकास नहीं हो सकता।

पौष कृष्णा १०

माया का मालिक होना और बात है और गुलाम होना और बात है। माया का गुलाम माया के लिए झूठ बोल सकता है, कपटाचार कर सकता है, मगर माया का मालिक ऐसा नहीं करेगा। अगर न्याय-नीति के साथ माया रहे तो वह रक्खेगा, अगर वह अन्याय के साथ रहना चाहेगी तो उसे निकाल बाहर करेगा। यही बात अन्य सांसारिक सुख-सामग्री के विषय में समझ लेना चाहिए।

* * * *

जड़ साइंस के चकाचौंध में पड़कर साइंस के निर्माता—आत्मा को नहीं भूल जाना चाहिए। अगर तुम साइंस के प्रति जिज्ञासा रखते हो तो साइंस के निर्माता के प्रति भी अधिक नहीं तो उतनी ही जिज्ञासा अवश्य रक्खो।

* * * *

दृश्य को देखकर दृष्टा को भूल जाना बड़ी भारी भूल है। क्या आप बतलाएंगे कि आपकी उंगली की हीरे की अंगूठी अधिक मूल्यवान् है या आप?

* * * *

तुम्हें जितनी चिन्ता अपने गहनों की है उतनी इन गहनों का आनन्द उठाने वाले आत्मा की है? गहनों का जितना ध्यान है, कम से कम उतना ध्यान आत्मा का रहता है?

पौष कृष्णा ११

सीता को आग ने क्यों नहीं जलाया ? क्या अग्नि ने पक्षपात किया था ? उसे किसने सिखाया कि एक को जला और दूसरे को नहीं ? शस्त्र का काम काट डालना है पर उसने कामदेव श्रावक को क्यों नहीं काटा ? शस्त्र क्या अपना स्वभाव भूल गया था ? विष खाने से मनुष्य मर जाता है। मगर मीरां-बाई क्यों न मरी ? क्या विष अपना कर्त्तव्य चूक गया था ?

सत्य यह है कि आत्मबली के सामने अग्नि ठंडी हो जाती है, शस्त्र निकम्मा हो जाता है और विष अमृत बन जाता है।

* * * *

मत समझो कि आपकी और दूसरों की आत्मा में कोई मौलिक अन्तर है। आत्मा मूल स्वभाव से सर्वत्र एक समान है। जो सच्चिदानन्द आपके घट में है वही घट-घट में व्याप रहा है। इसलिए समस्त प्राणियों को आत्मा के समान समझो। किसी के साथ वैर-भाव न करो। किसी का गला मत काटो। किसी को धोखा मत दो। दगाबाज़ी से बाज़ आओ। अन्याय से बचो। परस्त्री को माता के रूप में देखो,

पौष कृष्णा १२

तुम अपना जीवन सफल और तेजोमय बनाना चाहते हो तो गंदी पुस्तकों को कभी हाथ मत लगाना; अन्यथा वे तुम्हारा जीवन मिट्टी में मिला देंगी।

* * * *

एक आदमी भरे समुद्र को लकड़ी के टुकड़े से उलीच रहा था। किसी ने उससे कहा—'अरे पगले! समुद्र इस प्रकार खाली कैसे होगा?' तब उसने उत्तर दिया—भाई, तुम्हें पता नहीं है। इस समुद्र का अन्त है मगर इस आत्मा का अन्त नहीं है। कभी न कभी खाली हो ही जायगा।

* * * *

आधे मन से, ढिलमिल विचार से, किसी कार्य को आरंभ मत करो। चंचल चित्त से कुछ दिन काम किया और शीघ्र ही फल होता हुआ दिखाई न दिया तो छोड़-छाड़कर दूर हट गये; यह असफलता का मार्ग है। इससे किया-कराया काम भी मिट्टी में मिल जाता है।

* * * *

दर्पण आपके हाथ में है। अपना-अपना मुँह देखकर लगी हुई कालिख पोंछ डालिए।

पौष कृष्णा १३

आगे-आगे क़दम बढ़ाते रहने से लम्बा रास्ता भी कभी न कभी तय हो जाता है। पीछे पैर धरने से जहाँ थे वहीं आ जाओगे। जो क़दम आगे रख दिया है उसे पीछे मत हटाओ। तभी आप विजयी होओगे।

❀ ❀ ❀ ❀

मुँह से जैसी ध्वनि निकालोगे वैसी ही प्रतिध्वनि सुनने को मिलेगी। अगर कटुक शब्द नहीं सुनना चाहते तो अपने मुँह से कटुक शब्द मत निकालो।

❀ ❀ ❀ ❀

माता के स्तन का दूध पीना बालक का स्वभाव है, पर जो बालक स्तन का खून पीना चाहता है वह कैसा बालक! वह तो ज़हरीला कीड़ा है।

प्रकृति गाय-भैंस आदि से हमें दूध दिलाती है, लेकिन मनुष्य की लोलुपता इतनी प्रचंड है कि वह गाय-भैंस के दूध के बदले गाय-भैंस को ही पेट में डाल लेता है!

❀ ❀ ❀ ❀

जीवन में धर्म तभी मूर्त्तरूप धारण करता है जब अपने सुख का बलिदान करके दूसरों को सुख दिया जाता है।

पौष कृष्णा १४

जो वक्ता अपने श्रोता का लिहाज़ करता ह, उसे सत्य तत्त्व का निदर्शन नहीं कराता, वरन् उसे प्रसन्न करने के लिए मीठी-मीठी चिकनी-चुपड़ी बातें करता है, वह श्रोता का भयंकर अपकार करता है और स्वयं अपने कर्त्तव्य से च्युत होता है।

* * * *

समस्त प्राणियों को आत्मा के तुल्य देखने पर सुख-दुःख की साक्षी तुम्हारा हृदय अपने आप देने लगेगा। फिर शास्त्रों को देखने की आवश्यकता नहीं रहेगी। सच्चिदानन्द स्वयं ही शास्त्रों का सार बता देगा।

* * * *

जो तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य नहीं करते वह सब पर-पदार्थ हैं। जब तक पर-पदार्थों के प्रति ममता का भाव विद्यमान है, तब तक परमात्मा से मिलने का शौक ही उत्पन्न नहीं होता और जब तक परमात्मा से मिलने का शौक ही नहीं उत्पन्न हुआ तब तक उससे भेंट कसे हो सकती है?

* * * *

क्या संसार में कोई पुद्गल ऐसा है जो अब तक किसी के उपभोग में न आया हो? वास्तव में पुद्गलमात्र दुनिया की जूठन है।

पौष कृष्णा ३०

जिस अन्याय का प्रतिकार करने में तुम असमर्थ हो, कम से कम उसमें सहायक तो न बनो! अन्याय से अपने आपको पृथक् रक्खो।

* * * *

आप भोजन करते हैं पर क्या भोजन बनाना भी जानते हैं? अगर नहीं जानते तो क्या आप पराधीन नहीं हैं? छोटी-छोटी पराधीनताएँ भी जीवन को बहुत प्रभावित करती हैं।

* * * *

दुःख से मुक्त होना चाहते हो तो अच्छी बात है। मगर यह देखना होगा कि दुःख आता कहाँ से है? दुःख का असली कारण क्या है? तृष्णा ही दुःख का मूल है।

* * * *

संसार में धर्म न होता तो कितना भयंकर हत्याकांड मचा होता, यह कल्पना भी दुःखदायक प्रतीत होती है। संसार-व्यापी निविड़ अन्धकार में धर्म के प्रकाश की किरणें ही एकमात्र आशाजनक हैं।

पौष शुक्ला १

कुंभार जब मिट्टी लेकर घड़ा बनाने बैठता है तब वह मिट्टी में से हाथी-घोड़ा निकलने की आशा नहीं रखता। जुलाहा सूत लेकर कपड़ा बनाता है तो उसमें से ताँबा-पीतल निकलने की आशा नहीं रखता। किसान बड़े परिश्रम से खेती करता है, मगर पौधों में से हीरा-मोती निकलने की आकांक्षा नहीं करता। तो फिर धर्म का अनुष्ठान करने वाले लोग धर्म से पुत्र या धन की आशा क्यों रखते हैं? जो जिसका कारण ही नहीं, वह उसे कैसे पैदा करेगा?

*　　*　　*　　*

जब धर्म पर श्रद्धा होगी तो संसार के समस्त पदार्थों पर अरुचि उत्पन्न हो जाएगी। साँप को पकड़ने की इच्छा तभी तक हो सकती है, जब तक यह न मालूम हो कि इसमें विष है।

*　　*　　*　　*

धर्म के नाम पर प्रकट किये जाने वाले भूतकालीन और वर्त्तमानकालीन अत्याचार वस्तुतः धर्मभ्रम या धर्मान्धता के परिणाम हैं। धर्म तो सदा सर्वतोभद्र है। जहाँ धर्म है वहाँ अन्याय और अत्याचार को अवकाश ही नहीं।

पौष शुक्ला २

अन्तःकरण से उद्भूत होने वाला करुणाभाव का शीतल स्रोत दूसरों का संताप मिटाता ही है। भगवान् महावीर इसी करुणाभाव से प्रेरित होकर धर्मदेशना देने में प्रवृत्त हुए थे।

* * * *

धर्म और धर्मभ्रम में आकाश-पाताल जितना अन्तर है। गधा, सिंह की चमड़ी लपेट देने पर भी सिंह नहीं बन सकता। इसी प्रकार धर्मान्धता कभी धर्म नहीं हो सकती।

* * * *

धर्म के अनुयायी कहलाने वाले लोग भी अपने धर्महीन व्यवहार के कारण धर्म की निन्दा कराते हैं। दृढतापूर्वक धर्म का पालन किया जाय तो धर्मनिन्दकों पर भी उसका असर पड़े विना नहीं रहेगा।

* * * *

कदाचित् धर्मपालन करने में कष्ट उठाने पड़ते हैं तो क्या हुआ? कष्ट धर्म की कसौटी हैं। जिन्होंने धर्म के लिए कष्ट उठाये हैं उनसे पूछो कि धर्म के विषय में वह क्या कहते हैं?

पौष शुक्ला ३

कामना करने से ही धर्म का फल मिलेगा, अन्यथा नहीं; ऐसा समझना भूल है। बल्कि कामना करने से तो धर्म का फल तुच्छ हो जाता है और कामना न करने से अनन्तगुणा फल मिलता है।

* * * *

धर्मरत्न को ओछी कीमत में न बेचोगे तो फिर आपको किसी भी वस्तु की कमी नहीं रह जायगी।

* * * *

भगवान् की आज्ञा है कि सबको अपना मित्र समझो। अपने अपराध के लिए क्षमा माँगो और दूसरों के अपराध को क्षमा कर दो। शत्रु हो या मित्र, सब पर क्षमाभाव रखना महावीर भगवान् का महामार्ग है।

* * * *

धार्मिक अनुष्ठान का एकमात्र ध्येय आत्मशुद्धि ही होना चाहिये। स्वर्ग के सुखों के लिए प्रयत्न मत करो। स्वर्ग के सुखों के लालच में फँस गये तो मुक्ति से हाथ धो बैठोगे।

पौष शुक्ला ४

जिस वस्तु के विषय में ज्ञानपूर्वक विचार करने की क्षमता न हो, उसकी ओर दृष्टि न देना ही उचित है। ऐसा करते-करते मोह कम हो जाएगा।

* * * *

वास्तव में कोई मनुष्य ऐसा हो ही नहीं सकता, जिससे घृणा की जाय या जिसे छूने से छूत लगती हो। सभी प्राणियों की आत्मा सरीखी—परमात्मा के समान—है और शरीर की बनावट के लिहाज़ से मनुष्य-मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है। फिर अस्पृश्यता की कल्पना किस उचित आधार पर खड़ी है, यह समझ में नहीं ाता! इसका एकमात्र आधार जातिमद ही हो सकता है, जो हेय है।

* * * *

हे पथिक! तुझे परलोक जाना है, इसलिए मेरे बतलाये सद्‌गुण धारण कर लेगा तो तेरा पथ सुगम हो जायगा। सत्य, प्रामाणिकता, दया, नीति आदि सद्‌गुण धारण कर लेने से तेरा क्या बिगड़ जायगा?

पौष शुक्ला ५

हे जगत् के जीवो ! तुम दुःख चाहते हो या सुख की अभिलाषा करते हो ? अगर सुख चाहते हो तो दुःख की ओर क्यों भागे जा रहे हो ? लौटो, संवेग को साथ लेकर सुख की ओर बढ़ो ।

* * * *

काम, क्रोध आदि कषाय कुत्ते के समान हैं । इन्हें पहले तो 'घर' में घुसने ही नहीं देना चाहिए, कदाचित् घुस पड़ें तो उसी समय बाहर निकाल देना चाहिए ।

* * * *

जिनका ममत्व गलकर प्राणीमात्र तक पहुंच गया है, संसार के समस्त प्राणियों को जो आत्मवत् मानते हैं, जिन्होंने 'एगे आया' अर्थात् आत्मा एक है, इस सिद्धान्त को अपने जीवन में घटाया है, उनके लिए सभी जीव अपने हैं—कोई पराया नहीं है । ऐसी दशा में जैसे आप अपने बेटे की चिन्ता करते हैं, उसी प्रकार उदारभाव वाले ज्ञानी पुरुष प्रत्येक जीव की चिन्ता करते हैं ।

पौष शुक्ला ६

तुम्हारे काले बाल सफ़ेद हो गये हैं, सो तुम्हारी इच्छा से या अनिच्छा से ? यह बाल तुम्हें चेतावनी दे रहे हैं कि जब तुम हमें ही अपने काबू में नहीं रख सके तो और-और वस्तुओं पर क्या काबू रख सकोगे !

* * * *

धर्म की नौका तैयार है। संसार के मोह में न फँसकर धर्म-नौका पर आरूढ़ हो जाओ तो तुम्हारा कल्याण होगा।

* * * *

हे आत्मन् ! तू भगवान् की वाणी की उपेक्षा करके कहाँ भटक रहा है ? तुझे ऐसा दुर्लभ योग मिल गया है तो फिर इसे क्यों गँवा रहा है ?

* * * *

मैं कहता हूँ और सभी विचारशील व्यक्ति कहते हैं कि सदाचार ही शिक्षा का प्राण है। सदाचारशून्य शिक्षा प्राणहीन है और उससे जगत् का कल्याण नहीं हो सकता। ऐसी शिक्षा से जगत् का अकल्याण ही होगा। सदाचारहीन शिक्षा संसार के लिए अभिशाप बनेगी।

पौष शुक्ला ७

सच्चे शिक्षकों की बदौलत संसार का श्रेष्ठ विभूतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। संसार का उत्थान करने वाली महान् शक्तियों के जन्मदाता शिक्षक ही हैं। शिक्षक मनुष्य-शरीर के ढाँचे में मनुष्यता उत्पन्न करते हैं। शिक्षक का पद जितना ऊँचा है उसका कर्त्तव्य भी उतना ही महान् है।

*   *   *   *

अगर तुम किसी वस्तु के प्रति ममत्व न रक्खो तो परिग्रह तुम्हारा दास बन जाएगा। संसार की वस्तुओं पर तुम भले ही ममता रक्खो मगर वह अपने स्वभाव के अनुसार तुम्हें छोड़कर चलती बनेंगी। ममत्व होने के कारण तब तुम्हें दुःख का अनुभव होगा। अतएव तुम पहले से ही उन वस्तुओं सम्बन्धी ममत्व का त्याग क्यों नहीं कर देते?

*   *   *   *

संसार की वस्तुएँ तुम्हें छोड़ें और तुम उन वस्तुओं को छोड़ो, इन दोनों में कुछ अन्तर है या नहीं? दोनों का अन्तर समझकर अपना कर्त्तव्य निर्धारित करो।

पौष शुक्ला ८

अगर आप सम्पत्ति में हर्ष मानेंगे तो कल विपत्ति में विषाद भी आपको घेर लेगा। जो सम्पत्ति को सहजभाव से ग्रहण करता है वह विपत्ति को भी उसी भाव से ग्रहण करने में समर्थ होता है। विपत्ति की व्यथा उसे छू नहीं सकती। संसार तो सुख-दुःख और सम्पत्ति-विपत्ति के सम्मिश्रण से ही है। नमें हर्ष-शोक करना सच्चे ज्ञान का फल नहीं है।

* * * *

राज्य करना और राज्यसत्ता के बल पर सुधार करना साधारण मनुष्य का कार्य है। संसार के उत्थान का महान् कार्य करने वाले महापुरुषों ने पहले प्राप्त राज्य को ठुकरा दिया था। तभी उन्हें अपने महान् उद्देश्य में सफलता मिली।

* * * *

आवरण में लिपटी हुई शक्तियों को प्रकाश में लाना शिक्षा का ध्येय है। मगर शिक्षा की सफलता इस बात में है कि वह मनुष्य को ऐसे साँचे में ढाल दे कि वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करके सदुपयोग ही करे।

* * * *

जो विद्या बेगार के रूप में पढ़ी और पढ़ाई जाती है, वह गुलामी नहीं तो क्या स्वाधीनता सिखलाएगी?

पौष शुक्ला ६

एक ओर चँवर-छत्र धारण किये कोई रानी हो और दूसरी ओर महतरानी हो तो दोनों में से जनसाधारण के लिए उपयोगी कौन है ? रानी के अभाव में किसी का कोई काम नहीं रुकता मगर महतरानी के अभाव में जीवन दूभर हो सकता है। इसी कारण तो वह महत्तरानी—बड़ी रानी—कहलाती है। अगर आप रानी को ही बड़ा समझते हैं तो कहना चाहिये कि आप वास्तविकता से दूर हट रहे हैं।

* * * *

विचित्र न्याय है ! गन्दगी फैलाने वाले आप अच्छे और ऊँचे तथा गन्दगी मिटाने वाले (हरिजन) लोग बुरे और हीन ! न्याययुक्त बुद्धि से उनके साथ अपने कर्त्तव्य की तुलना करके देखो तो आपकी आँखें खुल जाएँगी।

* * * *

यों तो मस्तक, मस्तक ही रहता है, हाथ हाथ ही रहता है और पैर भी पैर ही रहता है, लेकिन मस्तक पैर की उपेक्षा नहीं करता, वरन् उसकी रक्षा करता है। जैसे इन सभी अंगों का परस्पर सम्बन्ध है, वैसे ही चारों वर्णों का भी सम्बन्ध है।

पौष शुक्ला १०

अब तो मेहतर अपना परम्परागत कार्य करते हैं, लेकिन कर्मभूमि के आरम्भ में भगवान् ऋषभदेव ने जब उन्हें यह कार्य सौंपा होगा तब क्या समझाकर सौंपा होगा ? और उन्होंने क्या समझकर यह कार्य स्वीकार किया होगा ? न जाने क्या उच्चतर आदर्श उनके सामने रहा होगा !

बच्चों की सार-सँभाल करने वाली वृद्धा के प्रति घर का मालिक कहता है—'माताजी ! यह सब आपका ही पुण्य प्रताप है। आप ही सबकी सेवा करती हैं, रक्षा करती हैं, नहीं तो तीन ही दिन में सबकी धज्जियाँ उड़ जाएँ। आपकी बदौलत ही हम आराम की जिन्दगी बिता रहे हैं।'

भगवान् ऋषभदेव ने इनके आदि पुरुषों को ऐसा ही तत्त्व न समझाया होगा ? जिस प्रकार समाज में सेवाभावी मनुष्य को बहुमान दिया जाता है, उसी प्रकार क्या भगवान् ने बहुमान देकर उन्हें यह काम न सौंपा होगा ? आजकल की तरह सफ़ाई करने वाले लोग उस समय घृणा की दृष्टि से देखे गये होते तो कौन अपने को स्वेच्छापूर्वक घृणास्पद बनाता ?

पौष शुक्ला ११

चारों वर्ण अपना-अपना कार्य करते हैं और सभी कार्य समाज के लिए उपयोगी हैं। ऐसी स्थिति में किसी को किसी के प्रति घृणाभाव रखने का क्या अधिकार है?

* * * *

चाहे चन्द्र से आग बरसने लगे और पृथ्वी उलट जाय किन्तु सत्पुरुष झूठ कदापि नहीं कह सकते।

* * * *

जो आत्मा औपाधिक मलीनता को एक ओर हटाकर, अन्तर्दृष्टि होकर, अनन्यभाव से अपने विशुद्ध स्वरूप का अवलोकन करता है और समस्त विभावों को आत्मा से भिन्न देखता है, उसे सोऽहं के तत्त्व की प्रतीति होने लगती है। वहिरात्मा पुरुष की दृष्टि में स्थूलता होती है, अतएव वह शरीर तक, इन्द्रियों तक या मन तक पहुँचकर रह जाता है, उसे इन शरीर आदि में ही आत्मत्व का भान होता है, मगर अन्तरात्मा पुरुष अपनी पैनी नज़र से, शरीर आदि से परे सूक्ष्म आत्मा को देखता है। आत्मा में असीम तेजास्विता, असीम वल, अनन्त ज्ञानशक्ति और अनन्त दर्शनशक्ति देखकर वह विस्मित-सा हो रहता है। उस समय उसके आनन्द का पार नहीं रहता।

पौष शुक्ला १२

जितना कर सकते हो उतना ही कहो और जो कुछ कहते हो उसे पूर्ण करने की अपने ऊपर जिम्मेदारी समझो।

* * * *

तुझे मानव-शरीर मिला है, जो संसार का समस्त वैभव देने पर भी नहीं मिल सकता। सम्पूर्ण संसार की विभूति एकत्र की जाय और उसके बदले यह स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय तो क्या ऐसा होना सम्भव है?

* * * *

क्या यह भाग्यशालिनी जिह्वा तुझे परनिन्दा, मिथ्याभाषण और उत्पात करने-कराने के लिए मिली है? अगर नहीं, तो क्या आशा की जाय कि तू झूठ नहीं बोलेगा?

* * * *

जिस धर्मगुरु के चरणों में अपना जीवन अर्पण करना चाहते हो, जिसे प्रकाशस्तम्भ मानकर निःशंक आगे बढ़ना चाहते हो, जिसे भव-भव का मार्गप्रदर्शक बना रहे हो और जिसकी वाणी के अनुसार अपनी जीवनसाधना प्रारम्भ करना चाहते हो, उसकी परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं समझते!

पौष शुक्ला १३

अगर तुम फैशन के फंदे से बाहर नहीं निकल सकते तो कम से कम उनकी निन्दा तो मत करो जिन्होंने फ़ैशन का मोह छोड़कर स्वेच्छापूर्वक सादगी धारण की है, जीवन को संयत बनाया है और विलासिता का त्याग किया है।

*   *   *   *

मैं बार-बार कहता हूँ कि सब अनर्थों का मूल विलासिता है।

*   *   *   *

अपने क्षुद्र प्रयत्न पर अहंकार न करना। अहंकार किया तो दुःख नहीं मिटेगा। जो कुछ करते हो उसे परमात्मा के पवित्रतम चरणों में समर्पण कर दो और उसी से विनम्रभाव से, उज्ज्वल अन्तःकरण से, अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा एकत्र करके दुःख दूर करने की प्रार्थना करो।

*   *   *   *

परमात्मा से उस मूलभूत दुःख के विनाश की प्रार्थना करना चाहिये जो और किसी के मिटाये नहीं मिट सकता और जिसके मिट जाने पर संसार की असीम सम्पदा भी किसी काम की नहीं रहती।

पौष शुक्ला १४

जब तुम परमात्मा से संसार की कोई वस्तु माँगते हो तो समझो कि दुःख माँगते हो।

* * * *

आज अपूर्व अवसर है। कौन जानता है कि जीवन में ऐसा धन्य दिवस कितनी बार आएगा या आएगा ही नहीं? इसलिए इसका सदुपयोग करके अन्तःकरण की मलीनता धो डालो। आत्मा को स्वच्छ स्फटिक के समान बना लो। ऐसा करने से आपका महान् कल्याण होगा। क्षमा का सुदृढ़ कवच धारण करके निर्भय बन जाओ।

* * * *

वैर से ही वैर बढ़ता है। आपके हृदय का वैर आपके शत्रु की वैराग्नि का ईंधन है। जब उसे ईंधन नहीं मिलेगा तो वह आग कब तक जलती रहेगी? आज नहीं तो कल अवश्य बुझ जाएगी।

* * * *

आप धनवान् हैं तो क्या हुआ, गरीबों का आपके ऊपर ऋण है।

पौष शुक्ला १५

क्या गांठ काटे बिना भरपेट भोजन नहीं मिल सकता? न्याय-नीति से आजीविका चलाने वाले क्या भूखों मरते हैं? बेचारे बछड़े को उसकी माता का थोड़ा-सा दूध पी लेने दोगे तो क्या तुम्हारे बाल-बच्चे बिना दूध ही रह जाएँगे?

* * * *

अगर सब जीवों को मित्र बनाने से काम नहीं चलेगा तो क्या सबको शत्रु बनाने से संसार का काम ठीक चलेगा? सबको शत्रु बनाने से ही ठीक काम चल सकता हो तो आप भी सबके शत्रु समझे जाएँगे और ऐसी दशा में संसार में एक क्षण का भी जीवन कठिन हो जाएगा।

* * * *

मनाने वाला हो तो मन क्या नहीं मान लेता? वह सभी कुछ समझ लेता है, समझाने वाला चाहिए। विवेक से कार्य करने वालों के लिए मन अबोध शिशु के समान है।

* * * *

उत्साही पुरुष पर्याप्त साधनों के अभाव में भी, अपने तीव्र उत्साह से कठिन से कठिन कार्य भी साध लेता है।

माघ कृष्णा १

जिन गरीबों ने नाना कष्ट सहन करके आपको रईसी दी है और जिन पशुओं की बदौलत आप पल रहे हैं, उनके प्रति कृतज्ञ होकर प्रत्युपकार क्यों नहीं करते? साहूकार कहलाकर भी ऋण चुकाना आपको अभीष्ट नहीं है?

* * * *

विवाह का उद्देश्य चतुष्पद बनना नहीं, चतुर्भुज बनना है। विवाह पाशविकता का पोषण नहीं करता, उसे सामर्थ्य का पोषक होना चाहिए।

* * * *

अनीति का प्रतिकार न करना राजा के लिए कलंक का टीका है। युद्ध के भय से जो राजा अन्याय, अत्याचार होने देगा, वह पृथ्वी को नरक बना डालेगा और अपने धर्म को कलंकित करेगा।

* * * *

हे आत्मा, तू परमात्मा को सुमर। तू और परमात्मा दो नहीं—एक हैं। अब तू चेत जा।

माघ कृष्णा २

केवल धन के उपार्जन और रक्षण में न लगे रहो। मनुष्यजीवन जड़ पदार्थों की उपासना के लिए नहीं है। दया-दान की ओर ध्यान दो।

*　　*　　*　　*

जो पुरुष पूर्णरूप से आत्माभिमुख हो जाता है, उसकी आत्मा ही उसका विश्व वन जाता है। उसे अपनी आत्मा में जो रमणीयता प्रतीत होती है, वह अन्यत्र कहीं नहीं। आत्मा में अध्यवसायों के उत्थान और पतन की जो परम्परा निरन्तर जारी रहती है, उसे तटस्थभाव से निरीक्षण करने वाले आत्म-द्रष्टा को वाहरी दुनिया की ओर ध्यान देने की फुर्सत ही नहीं रहती।

*　　*　　*　　*

तत्त्वज्ञानी पुरुष विषयभोग से इसी प्रकार दूर भागते हैं, जैसे साधारण मनुष्य काले नाग को देखकर।

*　　*　　*　　*

विवेकपूर्ण वैराग्य की स्थिति में किसी को समझा-बुझाकर संसार में नहीं फँसाया जा सकता।

माघ कृष्णा ३

जीवन के वास्तविक उत्कर्ष के लिए उच्च और उज्ज्वल चरित्र की आवश्यकता है। चरित्र के अभाव में जीवन की संस्कृति अधूरी ही नहीं, शून्यरूप है।

* * * *

जो माता-पिता अपने बालक को धर्म की शिक्षा ही न देंगे उनका बालक विनीत किस प्रकार बन सकेगा ?

* * * *

संसार के लोग झूठ ही कहते हैं कि हमें मरने का ज्ञान है। जिसे मृत्यु का स्मरण होगा वह बुरे काम क्यों करेगा ? वह अन्याय, अत्याचार और पाप कैसे कर सकता है ?

* * * *

जो जन्मा है वह मरेगा ही। जिसका उदय हुआ है वह अस्त भी होगा। जो फूला है वह कुम्हलाएगा ही।

* * * *

तप में अपूर्व, अद्‌भुत और आश्चर्यजनक शक्ति है। तपस्या की आग में आत्मा के समस्त विकार भस्म हो जाते हैं और आत्मा सुवर्ण की तरह प्रकाशमान हो उठता है।

माघ कृष्णा ४

जिसकी आत्मा में ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है, जो जगत् के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, उसे संसार असार प्रतीत होने लगता है। संसार की समस्त सम्पदा और विनोद एवं विलास की विविध सामग्री उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। संसारी लोगों द्वारा कल्पित मूल्य और महत्व उसके लिए उपहास का पात्र है। वह बहुमूल्य समझे जाने वाले हीरे को पाषाण के रूप में देखता है। भोग को रोग मानता है। ऐसे विरक्त पुरुष को वासनाओं के बन्धन में बँधे हुए साधारण मनुष्यों की बुद्धि पर तरस आता है।

* * * *

बालक को गुड़िया की तरह सिंगार कर और अच्छा भोजन देकर माँ-बाप छुट्टी नहीं पा सकते। जिसे उन्होंने जीवन दिया है, उसके जीवन का निर्माण भी उन्हें करना है। जीवन-निर्माण का अर्थ है संस्कार-सम्पन्न बनाना और बालक की विविध शक्तियों का विकास करना। शक्तियों का विकास हो जाने पर वह सन्मार्ग में लगें, सत्कार्य में उनका प्रयोग हो और दुरुपयोग न हो, यह सावधानी रखना भी माता-पिता का कर्त्तव्य है।

माघ कृष्णा ५

सन्तान के प्रति माता-पिता का क्या कर्त्तव्य है, उन पर कितना महान् उत्तरदायित्व है, यह बात माता-पिता को भली-भाँति समझ लेना चाहिये। सन्तान का सुख संसार में बड़ा सुख माना जाता है तथापि सन्तान को अपने मनोरंजन और सुख का साधन मात्र बनाकर उसकी स्थिति खिलौना जैसी बना डालना उचित नहीं है।

* * * *

ज्यों-ज्यों मांस-मदिरा का प्रचार बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों रोग बढ़ते जाते हैं, नई-नई आश्चर्यजनक बीमारियां डाकिनों की तरह पैदा हो रही हैं, उम्र का औसत घटता जाता है, शरीर की निर्बलता बढ़ती जाती है, इन्द्रियों की शक्ति 'क्षीण' से क्षीणतर होती जा रही है, देखते-देखते चटपट मौत आ घेरती है, फिर भी अन्धी दुनिया को होश नहीं आता। क्या प्राचीन काल में ऐसा था? नहीं तो फिर 'पूर्व' की ओर—उदय की दिशा में—प्रकाश के सन्मुख न जाकर लोग 'पश्चिम' की तरफ—अस्त की ओर—मृत्यु के मुँह की सीध में क्यों जा रहे हैं? जीवन की लालसा से प्रेरित होकर मौत का आलिंगन करने को क्यों उद्यत हो रहे हैं?

माघ कृष्णा ६

बाहर से ज्ञान ठूंसना शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा है—बालक की दबी हुई शक्तियों को प्रकाश में ले आना, सोई हुई शक्तियों को जगा देना, बालक के मस्तिष्क को विकसित कर देना, जिससे वह स्वयं विचार करने की क्षमता प्राप्त कर सके।

*   *   *   *

संसार की माया (धन-दौलत) गेंद के समान है। अगर खिलाड़ी की तरह इसे देते रहे तब तो ठीक है—खेल चलता रहेगा, अगर इसे पकड़कर बैठ गये तो खेल भी बन्द हो जाएगा और धप्पे भी खाने पड़ेंगे।

*   *   *   *

पुण्यवान् होने का अर्थ आलसी होना नहीं है। आलस्य में डूबे रहना तो पुण्य का नाश करना है।

*   *   *   *

दुःख के साथ संघर्ष करते-करते आत्मा में एक प्रकार की तेजस्विता का प्रादुर्भाव होता है। अन्तःकरण में दृढ़ता आती है। हृदय में बल आता है और तबीयत में मस्ती आती है।

माघ कृष्णा ७

दुःखों को सहन करने में विजय का मधुर स्वाद आता है। अतएव दुःख हमारे शत्रु नहीं, मित्र हैं। शत्रु वह मानसिक वृत्ति है जो आत्मा को दुःखों के सामने कायर बनाती है और दुःखों से दूर भागने के लिए प्रेरित करती है। सत्वशाली पुरुष दुःखों से बचने की प्रार्थना नहीं करता, वरन् दुःखों पर विजय प्राप्त करने योग्य बल की प्रार्थना करता है।

* * * *

दुःखों का रोना मत रोओ। हाय दुःख, हाय दुःख मत चिल्लाओ। संसार में अगर दुःख हैं तो उन पर विजय प्राप्त करने की क्षमता भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। रोना-तो स्वयं ही एक प्रकार का दुःख है। दुःख की सहायता से ही क्या दुःखों को जीतना चाहते हो?

* * * *

जगत् की प्रचलित व्यवस्था में दुःख का ही प्रधान स्थान है। दुःख संसार का व्यवस्थापक है।

दुःखरूपी विशाल मशीन में ही संसार की सारी व्यवस्था ढली है।

माघ कृष्णा ८

सुख के संसार में विलास के कीड़े उत्पन्न होते हैं और दुःख की दुनिया में दिव्यशक्ति से सम्पन्न पुरुषों का जन्म होता है।

*　　　*　　　*　　　*

अगर आपको निश्चय हो गया है कि वैरभाव त्याज्य है, उससे सन्ताप उत्पन्न होता है और आत्मा कलुषित होती है तो आपको उसका त्याग कर ही देना चाहिए। चाहे दूसरा त्याग करे या न करे। आप त्याग करेंगे तो आपका कल्याण होगा, वह त्याग करेगा तो उसका कल्याण होगा। यह कोई सौदा नहीं है कि वह दे तो मैं दूँ।

*　　　*　　　*　　　*

तुम्हारे पूर्वजों ने तुम्हें जो प्रतिष्ठा इस विश्व में दिलाई है, क्या वह तुम अपनी संतति को नहीं दिला सकोगे ? अगर न दिला सके तो सपूत नहीं कहलाओगे। सपूत बनने के लिए पाप से डरो, नीति को मत छोड़ो, धर्म को जीवन में एक-रस कर लो।

*　　　*　　　*　　　*

ईश्वर के विषय में अगर सुदृढ़ विश्वास हो गया तो वह सभी जगह मिलेगा। विश्वास न हुआ तो कहीं नहीं मिलेगा।

माघ कृष्णा ६

जिसे परमात्मा की नित्यता और व्यापकता पर विश्वास होगा, उससे पापकर्म कदापि न होगा। जब कभी उसके हृदय में विकार उत्पन्न होगा और कपट करने की इच्छा का उदय होगा, तभी वह सोचेगा—ईश्वर व्यापक है, उसमें भी है, मुझमें भी है। मैं कैसे कपट करूँ ?

* * * *

जो परमात्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता वह आत्मा की सत्ता को अस्वीकार करता है और आत्मा को अस्वीकार करने वाला अपना ही निषेध करता है और फिर अपना निषेध करने वाला वह कौन है ?

* * * *

पर-पदार्थ का संयोग हुआ और उसमें अहंभाव या मम-भाव धारण किया कि दुःख की उत्पत्ति होती है। उस दुःख को मिटाने के लिए जीव फिर नवीन पदार्थों का संयोग चाहता है और परिणाम यह होता है कि दुःख बढ़ता ही चला जाता है।

माघ कृष्णा १०

संसार-वासना के वशवर्त्ती होने के कारण कई लोग धर्म-सेवन भी वासनाओं की पूर्ति के उद्देश्य से ही करते हैं। कनक और कामिनी के भोग में सुविधा और वृद्धि होने के लिए ही वह धर्म का आचरण करते हैं। ऐसे लोगों का अन्तःकरण वासना की कालिमा से इतना मलीन हो गया है कि परमात्मा का मनमोहन रूप उस पर प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता।

*　　*　　*　　*

सच्ची धार्मिकता लाने के लिए नीतिमय जीवन बनाने की अनिवार्य आवश्यकता है। नीति, धर्म की नींव है।

*　　*　　*　　*

रात्रिभोजन अत्यन्त ही हानिकारक है। क्या जैन और क्या वैष्णव—सभी ग्रन्थों में रात्रिभोजन को त्याज्य माना गया है। आजकल के वैज्ञानिक भी रात्रिभोजन को राक्षसी भोजन कहते हैं। रात्रि में पक्षी भी खाना-पीना छोड़ देते हैं। पक्षियों में नीच समझे जाने वाले कौए भी रात में नहीं खाते। हाँ, चमगीदड़ रात्रि को खाते हैं, परन्तु क्या आप उन्हें अच्छा समझते हैं? आप उनका अनुकरण करना पसन्द करते हैं?

माघ कृष्णा ११

पनचक्की आटे का असली सत्व आप खा जाती है और आटे का निःसत्व कलेवर ही बाकी रखती है। पनचक्की में पिसकर निकला हुआ आटा जलता हुआ होता है। वह मानो कहता है—'मेरा सत्व चूस लिया गया है और मैं बुखार चढ़े हुए मनुष्य की तरह कमज़ोर हो गया हूँ।'

* * * *

आप सामायिक करते हैं, धर्मध्यान करते हैं, सो तो अच्छी बात है, पर कभी इस ओर भी ध्यान देते हैं कि आपके घर में पानी छानने के कपड़े की क्या दशा है?

* * * *

ईश्वर को ढूंढने के लिए इधर-उधर मत भटको। पृथ्वीतल बहुत विशाल है और तुम्हारे पास छोटे-छोटे दो पैर हैं। इनके सहारे तुम कहाँ-कहाँ पहुँच सकोगे? फिर इतना समय भी तुम्हारे पास कहाँ है?

मन को शान्त और स्वस्थ बनाओ। फिर देखोगे तो ईश्वर तुम्हारे ही निकट-निकटतर दिखाई देगा।

माघ कृष्णा १२

देखा जाता है कि मनुष्य की आकृति धारण करने वाला प्राणी पशु की अपेक्षा भी बुरे काम करता है। गधों ने बुरे काम किये और उनके लिए कानून बना, यह आज तक नहीं सुना।

* * * *

संसार पर निगाह दौड़ाइए तो आपको समझने में तनिक भी देरी नहीं लगेगी कि मनुष्य को मनुष्य से जितना भय है, उतना किसी भी अन्य जीवधारी से नहीं है। एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य के लिए कितना विकराल है? मनुष्य का जितना निर्दयतापूर्वक संहार मनुष्य ने किया और कर रहा है, उतना कभी किसी ने नहीं किया।

पशु, पशुओं को मारने के लिए कभी फौज नहीं बनाता। मगर मनुष्यों ने करोड़ों मनुष्यों की जो फौज बना रक्खी है, वह किसलिए है? मनुष्यों का ही संहार करने के लिए।

पशु कम से कम वस्तुओं पर अपना निर्वाह करता है। वह पेट भर खाने के सिवाय कोई संग्रह नहीं करता, मगर मनुष्य की संग्रहलालसा का कहीं ओर-छोर नहीं।

माघ कृष्णा १३

मनुष्यत्व की श्रेष्ठता इस कारण नहीं है कि मनुष्य अपनी विशिष्ट बुद्धि से बुरे कामों में पशुओं को भी मात कर दे, वरन् वह प्राणी-जगत् का राजा इसलिए है कि सद्गुणों को धारण करे, धर्म का पालन करे, स्वयं जीवित रहते हुए दूसरों के जविन में सहायक हो।

* * * *

जो लोग ईश्वर को आँखों से ही देखना चाहते हैं और देखे बिना उस पर विश्वास नहीं करना चाहते, वे भ्रम में पड़े हुए हैं। ईश्वर को देखने के लिए दिव्यदृष्टि की आवश्यकता है।

* * * *

लोभ, लालच, काम, क्रोध आदि से मलीन हृदय की पुकार परमात्मा के पास नहीं पहुँचती। स्वच्छ हृदय से ईश्वर की प्रार्थना करने से ही मनोवांछित कार्य की सिद्धि होती है।

* * * *

हृदय ही वह भूमिका है जिस पर दुःख का विकराल विष-वृक्ष उगता, अंकुरित होता और फूलता-फलता है।

माघ कृष्णा १४

जिसका चित्त ईश्वर पर मोहित होकर संसार की और वस्तुओं से हट जाएगा, जो एकमात्र परमात्मा को ही अपना आराध्य मानेगा, जो परमात्म-प्राप्ति के लिए अपने सर्वस्व को हँसते-हँसते ठुकरा देगा, वह परमात्मा को ही 'मोहनगारो' मानेगा।

परमात्मा 'मोहनगारो' नहीं है तो भक्तजन किसके नाम पर संसार का विपुल वैभव त्याग देते हैं? अगर ईश्वर में आकर्षण न होता तो बड़े-बड़े चक्रवर्ती और सम्राट् उसकी खोज के लिए वन की खाक क्यों छानते फिरते?

अगर भगवान् किसी का मन नहीं मोहते तो प्रह्लाद को किसने पागल बना रक्खा था? मीरां ने किस मतलब से कहा था—'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।'

मछली को जल में क्या आनन्द आता है, यह बात तो मछली ही जानती है, उसी से पूछो। दूसरा कोई क्या जान सकता है? इसी प्रकार जिन्हें परमात्मा से उत्कट प्रेम है, वही बतला सकते हैं कि परमात्मा में क्या आकर्षण है! कैसा सौन्दर्य है! और कैसी मोहक शक्ति है! क्यों उन्हें परमात्मा के ध्यान बिना चैन नहीं पड़ता!

माघ कृष्णा ३०

अगर आपने धन सम्बन्धी चिन्ता मिटाने के लिए त्रिलोकीनाथ से प्रार्थना की तो क्या आपने त्रिलोकीनाथ को पहचाना है ? परमात्मा से यही चाहा तो उसे त्रिलोकीनाथ समझा या सेठ-साहूकार समझा ?

कई लोग शारीरिक रोग मिटाने के लिए परमात्मा की प्रार्थना किया करते हैं। उनकी समझ में भगवान् डाक्टर या वैद्य हैं ! ऐसे लोग परमात्मा की महिमा नहीं समझते।

* * * *

विश्वास रक्खो, ईश्वर के दरबार में संतोष करके रहोगे तो रोटी दौड़कर आएगी।

* * * *

ईश्वर जब मिलेगा तब अपने आप में ही मिलेगा। उसकी भेंट विश्वास में है।

जहाँ संदेह आया, चित्त में चंचलता उत्पन्न हुई कि ईश्वर दूर भाग जाता है।

माघ शुक्ला २

मनुष्य-शरीर सुलभ नहीं है भाई, धर्म किया करो। धर्म का आचरण न किया तो यह शरीर किस काम का ?

* * * *

लोगों को पुरानी और फटी पोशाक बदलने में जैसा आनन्द होता है, वैसा ही आनन्द ज्ञानी को मृत्यु के समय—शरीर बदलते समय—होता है।

* * * *

दूसरों के अवगुण देखना स्वयं एक अवगुण है। दुनिया के अवगुणों को चित्त में धारण करोगे तो चित्त अवगुणों का खजाना बन जायगा।

अपनी दृष्टि ऐसी उज्ज्वल बनाइए कि आपको दूसरे के गुण दिखाई दें। अवगुणों की तरफ दृष्टि मत जाने दीजिए। हाँ, अवगुण देखने हैं तो अपने ही अवगुण देखो।

* * * *

धर्म जब प्राणों के समान प्रिय जान पड़ने लगे तभी समझना चाहिए कि हमारे अन्तःकरण में धर्मश्रद्धा है।

माघ शुक्ला ३

विद्या ग्रहण करने में विनय की और विद्या देने में प्रेम की आवश्यकता रहती है। विनय के बिना विद्या ग्रहण नहीं की जा सकती और प्रेम के अभाव में विद्या चढ़ती नहीं है।

* * * *

हे जीवो! अकड़कर मत रहो—अभिमानी मत बनो। नम्रता धारण करो। तुम में अकड़कर रहने की शक्ति है तो नम्र बनने की भी शक्ति है।

* * * *

जैसे बालक निष्कपटभाव से अपने पिता के समक्ष सारी बातें स्पष्ट कह देता है, उसी प्रकार गुरु के समक्ष आलोचना करके सब बातें सरलतापूर्वक साफ़-साफ़ कह देनी चाहिए।

कपट करके दूसरे की आँखों में धूल झोंकी जा सकती है, परन्तु क्या परमात्मा को भी धोखा दिया जा सकता है?

* * * *

जो शक्ति पराई निन्दा में खर्च करते हो वह आत्मनिन्दा में ही क्यों नहीं लगाते?

माघ शुक्ला ४

आप मानव-जीवन में रहकर दूसरों की जो भलाई कर सकते हैं, परोपकार कर सकते हैं और साथ ही आत्मकल्याण की जो साधना कर सकते हैं, वह देवलोक में रहने वाले इन्द्र के लिए भी शक्य नहीं है। इस दृष्टि से विचार करो कि मानव-जीवन मूल्यवान् है या देव-जीवन ?

*　　*　　*　　*

गुणी जनों के प्रति सद्भाव न प्रकट करना अपने लिए दुःख उत्पन्न करने के समान है।

गुणी पुरुषों के गुण देखने के बदले दोष देखना आत्मा को पतित करना है।

*　　*　　*　　*

जो पुरुष अपने ज्ञान के अनुसार व्यवहार नहीं करता—व्यवहार करने की चेष्टा भी नहीं करता, उसका ज्ञान भी अज्ञान है। अज्ञानी गुरु तुम्हारे भीतर ज्ञान के बदले अज्ञान ही भरेगा।

*　　*　　*　　*

तुम अपनी कृपणता के कारण धन का व्यय नहीं कर सकते परन्तु धन तुम्हारे प्राणों का भी व्यय कर सकता है।

माघ शुक्ला ५

जिस दीपक में केवल बत्ती होगी या केवल तेल ही होगा, वह प्रकाश नहीं दे सकेगा। इसी प्रकार ज्ञान के अभाव में अकेली क्रिया से या क्रिया के अभाव में अकेले ज्ञान से कल्याण नहीं हो सकता।

*   *   *   *

एक राष्ट्र का लाभ जब दूसरे राष्ट्र को हानि पहुँचाकर प्राप्त किया जाता है तो वह अनर्थ का कारण बनता है। इससे राष्ट्रों में समष्टि-भावना नहीं उत्पन्न होती।

*   *   *   *

जिस राष्ट्रीयता में एक राष्ट्र दूसरे का सहायक और पूरक होता है, जिसमें प्रतिस्पर्द्धा के बदले पारस्परिक सहानुभूति की प्रधानता होती है, जहाँ विश्वकल्याण के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय नीति का निर्धारण होता है, वही शुद्ध राष्ट्रीयता है।

*   *   *   *

अहिंसा में ऐसी अपूर्व शक्ति है कि सिंह और हिरन, जो जन्म से विरोधी हैं, अहिंसक की जाँघ पर आकर सो जाते हैं।

माघ शुक्ला ६

मल्ल कुश्ती लड़ने के बाद और वीर योद्धा युद्ध करने के बाद, सन्ध्या समय अपनी शुश्रूषा करने वाले को बतला देता है कि आज सारे दिन में मुझे अमुक जगह चोट लगी है और अमुक जगह दर्द हो रहा है। शुश्रूषा करने वाला सेवक औषध या मालिश द्वारा उस दर्द को मिटा देता है और दूसरे दिन मल्ल कुश्ती करने के लिए और योद्धा युद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है। इसी प्रकार जो सन्त पुरुष अपने दोषों को प्रतिक्रमण द्वारा दूर कर देता है, वह निश्चितरूप से अपने कर्मों को जीत लेता है।

* * * *

कायर लोग जीभ का दुरुपयोग करते हैं, वीर पुरुष नहीं। कुत्ते भौंकते हैं, वीर सिंह नहीं भौंकता।

* * * *

भोजन का सार भाग वाणी को ही मिलता है। वाणी में शरीर की प्रधान शक्ति रहती है। अतएव वाणी द्वारा शक्ति का निरर्थक व्यय करना अनुचित है। बोलने में विवेक की बड़ी आवश्यकता है।

माघ शुक्ला ७

सच्ची विजय में किसी के पराजय की कामना नहीं होती। जिस विजय का मूल्य अन्य का पराजय है, वह विजय विशुद्ध विजय नहीं कहला सकती।

* * * *

विषमभाव रोग के समान है और समभाव आरोग्यता के समान है। विषमभाव का रोग समभाव की आराधना से ही मिटता है।

संसार में सर्वत्र समभाव की मात्रा पाई जाती है और समभाव के कारण ही संसार का अस्तित्व है। परन्तु ज्ञानी पुरुष समभाव पर ज्ञान का कलश चढ़ाते हैं। ज्ञानपूर्वक होने वाला समभाव ही सामायिक है।

* * * *

प्रत्येक कार्य में समभाव की आवश्यकता है। समभाव के बिना किसी भी कार्य में और किसी भी स्थान पर शान्ति नहीं मिल सकती; फिर भले ही वह कार्य राजनीतिक हो, या सामाजिक हो।

जिसमें समभाव होता है उसका हृदय माता के हृदय के समान बन जाता है।

माघ शुक्ला ८

आत्मा को परमात्मपद पर पहुँचाने का उपाय है परमात्मा के ध्यान में आत्मा का तल्लीन हो जाना। आत्मा जब परमात्मा के स्वरूप में निमग्न हो जाता है तब वह स्वयं परमात्मा बन जाता है।

* * * *

परमात्मा के पवित्र आसन पर भौतिक विज्ञान की प्रतिष्ठा करने वाले अशान्ति की ही प्रतिष्ठा कर सकते हैं, संहार को निमन्त्रित कर सकते हैं, और विलय का आह्वान कर सकते हैं। उनसे शान्ति की आशा कदापि नहीं रक्खी जा सकती।

* * * *

हे जीव! तू संसाररूपी जेलखाने में आया है और पत्नी आदि की बेड़ी तुझे पहनाई गई है। अब तू इस बेड़ी के बन्धन से छूटना चाहता है या अधिक बँधना चाहता है? अरे! यह मनुष्यजीवन बेड़ी काटने के लिए मिला है और बार-बार यह सुअवसर मिलना कठिन है।

* * * *

धर्म से सत्य को पृथक् कर दिया जाय तो धर्म नाममात्र के लिए ही शेष रहेगा।

माघ शुक्ला ६

तुम्हारे पूर्वजों की ओर से तुम्हारे लिए जो आदर्श उपस्थित किया गया है, वह अन्यत्र मिलना कठिन है। लेकिन तुम उस आदर्श की ओर ध्यान नहीं देते और इधर-उधर भटकते-फिरते हो।

* * * *

दुःख भोगते समय हाय-तोबा मचाने से अधिक दुःख होता है। अतएव दुःख के समय घबराओ मत। चित्त को प्रसन्न रखने की चेष्टा करो और परमात्मा का शरण ग्रहण करो।

* * * *

स्वयं दूसरे के वश में हो रहना सर्वोत्तम वशीकरण मंत्र है।

* * * *

तुम्हारे भीतर वास्तविक शान्ति होगी तो कोई दूसरा तुम्हें अशान्त नहीं कर सकेगा।

* * * *

जिन महापुरुषों ने सत्य को पूर्णरूप से प्राप्त कर लिया है, उनमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता।

माघ शुक्ला १०

राजा कदाचित् शरीर को बन्धन में डाल सकता है परन्तु मन को कोई भी बन्धन में नहीं बाँध सकता। मन तो स्वतन्त्र ही है। अतएव जेल में भी अगर मन से परमात्मा का स्मरण किया जाय तो जेल भी कल्याण का धाम बन सकता है।

* * * *

किसी एक सम्प्रदाय, धर्म या मज़हब के पीछे जो उन्मत्त है, जो स्वार्थवश अच्छे-बुरे की परवाह नहीं करता, जो वास्तविकता की उपेक्षा करके हाँ में हाँ मिलाना जानता है, ऐसा मनुष्य सत्य को नहीं पहचान सकता।

* * * *

मानव-शरीर आत्मा का प्रतिनिधि माना जाता है। तीर्थंकर, अवतार आदि इसी शरीर में हुए हैं। ऐसा उत्कृष्ट शरीर पाकर भी यदि विषय-कषाय के सेवन में इसका उपयोग किया गया तो अन्त में पश्चात्ताप ही हाथ लगेगा।

* * * *

आत्मा अमर और अविनाशी है, जब कि शरीर नाशवान् है। आत्मा को शारीरिक मोह में फँसाकर गिराना उचित नहीं।

माघ शुक्ला ११

मेरी ऐसी धारणा है कि यदि मनुष्य अपने सुबह से शाम तक के काम किसी विश्वस्त मनुष्य के समक्ष प्रकट कर दिया करे तो उसके विचारों और कार्यों में बहुत प्रशस्तता आ जाएगी। गृहस्थों को और कोई न मिले तो पति-पत्नी आपस में ही अपने-अपने कार्य एक-दूसरे पर प्रकट कर दिया करें। ऐसा करने से उन्हें अवश्य लाभ होगा।

*　*　*　*

जैसे पृथ्वी के आधार बिना कोई वस्तु नहीं टिक सकती और आकाश के आधार बिना पृथ्वी नहीं टिक सकती, इसी प्रकार सामायिक का आश्रय पाये बिना दूसरे गुण नहीं टिक सकते।

*　*　*　*

पश्चात्ताप करने में लोगों को यह भय रहता है कि मैं दूसरों के सामने हल्का या तुच्छ गिना जाऊँगा। मगर इस प्रकार का भय पतन का कारण है। स्वच्छ हृदय से पश्चात्ताप करने से आत्मा में अपने दोषों को प्रकट करने का सामर्थ्य आता है और दुर्बलता दूर होती है।

माघ शुक्ला १२

निर्भय होने पर तलवार, विष या अग्नि वगैरह कोई भी वस्तु तुम्हारा बाल बांका न कर सकेगी। वास्तव में दूसरी कोई भी वस्तु तुम्हारा बिगाड़ नहीं कर सकती, सिर्फ तुम्हारे भीतर पेठा हुआ भय ही तुम्हारी हानि करता है।

* * * *

अगर तुम्हारे अन्तःकरण में निन्दा करने की प्रवृत्ति है तो फिर उसका उपयोग आत्मनिन्दा करके निर्दोष बनने में क्यों नहीं करते ? परनिन्दा करके अपने दोषों की वृद्धि क्यों करते हो ? जब दुर्गुण ही देखने हैं तो अपने दुर्गुण देखो और उन्हीं की निन्दा करो।

* * * *

जो मनुष्य वचन से लघुता दिखलाता है मगर पाप का त्याग नहीं करता, वह वास्तव में लघुता का प्रदर्शन नहीं करता, ढोंग का प्रदर्शन करता है।

* * * *

जो बुद्धिमान् होगा और जो अपना कल्याण चाहता होगा, वह अपने व्रतों में पड़े हुए छिद्रों को प्रतिक्रमण द्वारा तत्काल बन्द कर देगा।

माघ शुक्ला १३

प्रजा को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह राजा या राज्यसत्ता के विरुद्ध भी पुकार कर सके और राजा या राज्यसत्ता को प्रजा की पुकार सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए।

*   *   *   *

भगवान् महावीर की शिक्षा कायरता धारण करने के लिए नहीं, वीरता प्रकट करने के लिए है।

वीर पुरुष अपनी तलवार से अपनी भी रक्षा करता है और दूसरों की भी रक्षा करता है। इसके विरुद्ध कायर के हाथ की तलवार उसी की हानि करती है और वह तलवार का भी अपमान करता है। तुम्हें वीर-धर्म मिला है। कायरता धारण करके वीर-धर्म का अपमान मत कराओ।

*   *   *   *

किसी भी वस्तु को केवल स्वाद की दृष्टि से मत अपनाओ। उसके गुणों और दोषों का विचार करना आवश्यक है। काँटे में लगा हुआ मांस मछली को अच्छा लगता है, परन्तु वह मांस उसके खाने की वस्तु है या उसकी मृत्यु का उपाय है?

माघ शुक्ला १४

आग पर पानी रखने से पानी उबलता है और उबलने पर सन्-सन् आवाज़ करता है। यह आवाज़ करता हुआ पानी मानो कह रहा है कि मुझमें आग बुझा देने की शक्ति है, लेकिन मेरे और आग के बीच में यह पात्र आ गया है। मैं पात्र में बन्द हूँ और इसी कारण आग मुझे उबाल रही है और मुझे उबलना पड़ रहा है।

इसी प्रकार आत्मा सुख-स्वरूप है किन्तु शरीर में कैद होने के कारण वह सन्ताप पा रहा है। शरीर का बन्धन हट जाने पर दुःखों की क्या मजाल कि वे आत्मा के पास फटक सकें।

* * * *

आज संसार में जो अशान्ति फैल रही है, उसका मुख्य कारण इच्छाओं का अपरिमित होना है। इच्छाओं की अपरिमितता ने साम्यवाद और कम्यूनिज्म को जन्म दिया है। धनवान् लोग पूँजी दबाकर बैठे रहें और गरीब दुःख पावें, तब गरीबों को धनिकों के प्रति ईर्षा होना स्वाभाविक है।

माघ शुक्ला १५

परमात्मा के ध्यान से आत्मा का परमात्मा बन जाना कोई अद्‌भुत बात नहीं है। मनुष्य जैसा बनने का अभ्यास करता है, वैसा ही बन जाता है, फिर आत्मा का परमात्मा बन जाना तो स्वाभाविक विकास है, क्योंकि आत्मा और परमात्मा मूलत. समान स्वभाव वाले हैं।

*   *   *   *

अहिंसा का विधि-अर्थ है—मैत्री, बन्धुता, सर्वभूत-प्रेम। जिसने मैत्री या बन्धुता की भावना जागृत नहीं की है, उसके हृदय में अहिंसा का सर्वांगीण विकास नहीं हुआ है।

*   *   *   *

हमारे अन्दर अनेक त्रुटियों में से एक त्रुटि यह भी है कि हम अपनी अन्तरंग ध्वनि की ओर कान नहीं देते। अन्तरात्मा जिस बात को पुकार-पुकार कर कहता है, उसे सुनने और समझने की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।

*   *   *   *

अहिंसा के बल के सामने हिंसा गलकर पानी-पानी हो जाती है।

फाल्गुन कृष्णा १

अगर तुम भय खाते हो तो समझ लो कि तुम्हारे अन्तर के किसी न किसी कोने में सत्य के प्रति अश्रद्धा का भाव मौजूद है। सत्य पर जिसे पूर्ण श्रद्धा है, वह निडर है। संसार की कोई भी शक्ति उसे भयभीत नहीं कर सकती।

*   *   *   *

आपको पाप से सचमुच घृणा है तो जैसे आपको अपना पाप असह्य जान पड़ता है, उसी प्रकार अपने पड़ौसी का भी असह्य जान पड़ना चाहिए। आप पापी का उद्धार करके उसे निष्पाप बनाने की चेष्टा कीजिए। यह आपकी सबसे बड़ी धर्म-सेवा होगी।

*   *   *   *

संसार के सभी मनुष्य समान होकर रहें, इस प्रकार का साम्यवाद कभी समस्त संसार में फैल सकता है; लेकिन उस समानता के भीतर जब तक बन्धुता न होगी, तब तक उसकी नींव बालू पर ही खड़ी हुई समझना चाहिए। यही नहीं, बन्धुताविहीन साम्यवाद विनाश का कारण बन सकता है।

फाल्गुन कृष्णा २

त्याग में अनन्त बल है, अमित सामर्थ्य है। जहाँ संसार के समस्त बल बेकार बन जाते हैं, अस्त्र-शस्त्र निकम्मे हो जाते हैं, वहाँ भी त्याग का बल अपनी अद्भुत और अमोघ शक्ति से कारगर होता है।

* * * *

जिसे तुम कर्त्तव्य मानते हो उसे केवल मानते ही न रहो—बल्कि आचरण में उतारो। अपने कर्त्तव्य की भावना को व्यवहार में लाने की चेष्टा करो।

* * * *

लोगों में आपस में लड़ने की पाशविक वृत्ति इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि वे अपने साथ अपने भगवान् को भी अछूता नहीं छोड़ना चाहते। उनका वश चले तो वे सांडों की तरह अपने-अपने भगवान् को भी लड़ा-भिड़ाकर तमाशा देखें!

* * * *

संसार के सभी प्राणी मेरे भाई हैं, समस्त संसार मेरा घर है और सारे संसार का वैभव ही मेरा वैभव है।

फाल्गुन कृष्णा ३

मित्रो! हमारी बात सुनो। अगर तुम शान्ति और सुख के साथ रहना चाहते हो तो अपने झूठे विज्ञान को, हिंसारूपी पिशाचिनी के पिता इस विज्ञान को समुद्र में डुबा दो। हिंसा को अभ्युदय का साधन मत समझो।

* * * *

मनुष्य का मन सिनेमा के दृश्यों की भाँति अस्थिर है। एक भाव उत्पन्न होता है और फिर तत्काल ही दूसरा भाव उसके स्थान पर अपना अधिकार कर बैठता है। विशुद्ध भावना को मलीमस भावना उसी प्रकार ग्रस लेती है, जैसे चन्द्रमा को राहु।

* * * *

पराधीनता की बेड़ियों को काटने का उपाय है—आत्म-निर्भर बनना। तुम पर-पदार्थों के अधीन रहो—संसार की वस्तुओं को अपने सुख का साधन समझो और फिर पराधीनता से भी बचना चाहो, यह सम्भव नहीं है। पूर्ण स्वाधीनता पूर्ण स्वावलम्बन से ही आती है।

फाल्गुन कृष्णा ४

मनुष्य अपने बुद्धि-वैभव के कारण पतन के मार्ग में अधिक कौशल के साथ अग्रसर हो रहा है। ईश्वर ही जाने, कहाँ उसके मार्ग का अन्त होगा। न जाने किस निविड़ अन्धकार में जाकर वह रुकेगा।

* * * *

कोई पाप छिपाने का प्रयास करे सो भले ही करे, पर पाप छिप नहीं सकता। उसका कार्य चिल्ला-चिल्लाकर उसके पापों की घोषणा कर देगा।

* * * *

परमात्मा से भेंट करने का सीधा मार्ग उसका भजन करना है।

* * * *

जिसके चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज अठखेलियाँ करता है उसे पाउडर लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। जिसके शरीर के अंग-प्रत्यंग से आत्मतेज फूट पड़ता हो उसे अलंकारों की अपेक्षा नहीं रहती।

फाल्गुन कृष्णा ५

हम जिस काम को करना सोचते हैं और जिसमें अच्छाई का अनुभव करते हैं, उस काम को अपने आप नहीं कर डालते, यह आत्मिक दुर्बलता नहीं तो क्या है ?

* * * *

जिस प्रकार सूर्य के सामने अन्धकार नहीं रहता, इसी प्रकार परमात्मा का साक्षात्कार होने पर आत्मा में कोई भूल शेष नहीं रहती ।

* * * *

जो लोग अपने अवगुणों को बड़े यत्न से छिपाकर अन्तःकरण में सुरक्षित रख छोड़ते हैं, उनका हृदय उन अवगुणों का स्थायी निवास-स्थान बन जाता है ।

* * * *

प्रत्येक व्यवस्था में विकार का निप मिल ही जाता है, पर विद्वानों का कर्तव्य है कि वे किसी व्यवस्था को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करने से पहले उसके अन्तस्तत्त्व का अन्वेषण करें और उसके विकारों को ही दूर करने की चेष्टा करें ।

फाल्गुन कृष्णा ६

सच्चा भक्त वही है जो माया के फन्दे में न फँसे। माया बड़ी छलनी है। उसने चिरकाल से नहीं, अनादिकाल से जीवात्मा को भुलावे में डाल रक्खा है।

*　　*　　*　　*

जिस दिन जड़ और चेतन के संसर्ग का सिलसिला समाप्त हो जाएगा, उसी दिन दुःख भी समाप्त हो जाएगा और एकान्त सुख प्रकट हो जाएगा।

*　　*　　*　　*

सच्चा माला फिराने वाला भक्त वह है जो अपने भाइयों के कल्याण की कामना करता है और अपने सुख की अभिलाषा का त्याग कर देता है।

जो अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख में परिणत कर देगा, जो समस्त प्राणियों में अपने व्यक्तित्व को बिखेर देगा, वह कभी किसी से छल-कपट नहीं कर सकता।

*　　*　　*　　*

जिसकी आत्मा में तेज नहीं है उसके शरीर में दीप्ति होना कैसे सम्भव है?

फाल्गुन कृष्णा ७

प्रार्थना के शब्द जीभ से भले ही उच्चारित हों मगर प्रार्थना का उद्भव अन्तःकरण से होना चाहिए। जब प्रार्थना अन्तर से उद्भूत होती है तो अन्तःकरण प्रार्थना के अमृत-रस में सराबोर हो जाता है। वह रस कैसा होता है, यह कहने की बात नहीं है। उसका अनुभव ही किया जा सकता है।

* * * *

विवाह के अवसर पर लड़के की माता को गीत गाने में जो आनन्द आता है, उससे कई गुणा आनन्द आन्तरिक प्रेम के साथ परमात्मा की प्रार्थना करने वाले को होता है।

* * * *

तुम्हें दूसरों के विषय में सोचने का अवकाश ही क्यों मिलता है ? तुम्हारे सामने कर्त्तव्य का पहाड़ खड़ा है। तुम्हें उससे फुर्सत ही कहाँ ? इसलिए यह विचार छोड़ो कि दूसरे क्या करते हैं ? जो कुछ कर्त्तव्य है उसे अकेले ही करना पड़े तो किये चलो। दूसरे के विषय में तनिक भी न सोचो।

* * *

बालविवाह करना अशक्ति का स्वागत करना ही है।

फाल्गुन कृष्णा ८

शास्त्रों के मर्म का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् ऋषभदेव द्वारा की हुई वर्णव्यवस्था कर्त्तव्य की सुविधा के लिए थी—अहंकार का पोषण करने के लिए नहीं। आज वर्णों क नाम पर उच्चता-नीचता की जो भावना फैली हुई है वह वर्णव्यवस्था का स्वरूप नहीं है—विकार है।

*　　*　　*　　*

जिसे गम्य-अगम्य का ज्ञान नहीं, भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध नहीं है, वह सच्चे अर्थ में मनुष्य कहलाने योग्य भी नहीं है।

*　　*　　*　　*

सन्तों की याचना भी एक प्रकार का दान है और वह दान भी अनुपम एवं अद्वितीय है।

*　　*　　*　　*

माना, काल बदल गया है, बदलता जा रहा है; पर काल ने तुम्हारे अभ्युदय की सीमा तो निर्धारित नहीं कर दी है। काल ने किसी के कान में यह तो नहीं कह दिया है कि तुम अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान मत दो। काल को ढाल बनाकर अपनी चाल को छिपाने का प्रयत्न मत करो।

फाल्गुन कृष्णा ६

एक बात तुम पापी से भी सीख सकते हो—'पापी अपनी पाप-बुद्धि में जितना दृढ़ है, हमें धर्मबुद्धि में उससे कुछ अधिक ही दृढ़ होना चाहिये।'

* * * *

तुम्हारे भीतर जो शक्ति विद्यमान है वह साधारण नहीं है। उस शक्ति के सामने विश्व की शक्ति टिक नहीं सकती। आवश्यकता है उसे जानने की, उस पर श्रद्धा रखने की।

* * * *

दृढ़ मनोबल के साथ किसी काम में जुट पड़ने पर कठिनाइयाँ अपने आप हल हो जाती हैं और आत्मा के बढ़ते हुए बल के सामने उन्हें परास्त होना पड़ता है।

* * * *

धर्म वीरों का होता है, कायरों का नहीं। वीर पुरुष अपनी रक्षा के लिए लालायित नहीं रहते, वरन् अपने जीवन का उत्सर्ग करके भी दूसरे की रक्षा के लिए सदा उद्यत रहते हैं।

फाल्गुन कृष्णा १०

अपनी दृष्टि को बाहर की ओर से भीतर की ओर करो। फिर देखो, तुम्हारी अन्तरात्मा में कितना आनन्द है, कितना ज्ञान है, कितना तेज है! अन्तरात्मा की ओर एक बार निहार लोगे तो कृतकृत्य हो जाओगे। तब संसार नीरस दिखाई देगा और तुम्हारे अनन्त कल्याण का मार्ग तुम्हें स्पष्ट रूप से दिखाई देगा।

* * * *

धर्म के आगे अनेक विशेषण लग जाने के कारण साधारण जनता चक्कर में पड़ जाती है कि हम किस विशेषण वाले धर्म का अनुसरण करें? कौनसा विशेषण हमें मुक्ति प्रदान करेगा? मुस्लिम, ईसाई, वैष्णव आदि जिसके विशेषण हैं, उस धर्म तत्त्व में वस्तुतः भेद नहीं है। धर्मतत्त्व एक है, अखंड है। उस अखण्ड तत्त्व के खण्ड-खण्ड करके, अनेकान्त में एकान्त की स्थापना करके, देश-काल के अनुसार, लोकरुचि की भिन्नता का आश्रय लेकर अनेक विशेषण लग गये हैं। सब विशेषणों को अलहदा करके तत्त्व का अन्वेषण किया जाय तो सत्य सूर्य के समान चमक उठेगा। जब धर्म सत्य है और सत्य सर्वत्र एक है तो धर्म अनेक कैसे हो सकते हैं?

फाल्गुन कृष्णा ११

धर्म में किसी भी प्रकार के पक्षपात को, जातिगत भेदभाव को, ऊँचनीच की कल्पना को, राजा-रंक अथवा अमीर-गरीब की भावना को तनिक भी स्थान नहीं है। धर्म की दृष्टि में यह सब समान हैं।

* * * *

अगर संसार की भलाई करने योग्य उदारता आपके दिल में नहीं आई है तो कम से कम अपनी सन्तान का अनिष्ट मत करो। उसके भविष्य को अन्धकार से आवृत मत बनाओ। जिसे तुमने जीवन दिया है उसके जीवन का सत्यानाश मत करो। अपनी सन्तान की रक्षा करो।

* * * *

बालक दुनिया के रक्षक बनने वाले हैं, ऐ भाइयो! छोटी उम्र में विवाह करके इन्हें संसार की कोल्हू में मत पीलो।

बालक गुलाब के फूल से कोमल हैं; इन पर दाम्पत्य का पहाड़ मत पटको। बेचारे पिस जाएँगे।

बालक निसर्ग का सुन्दरतम उपहार हैं। इस उपकार को लापरवाही से मत रौंदो।

फाल्गुन कृष्णा १२

अपना हित चाहते हो तो अहित करने वाले का भी हित ही चाहो। अहित करने वाले का अहित चाहना अपना ही अहित चाहना है।

* * * *

अखण्ड ब्रह्मचारी चाहे सो कर सकता है। वह अकेला सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है। वह ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है।

* * * *

छोटी बात को महत्व देना और बड़ी को भूल जाना, बस यहीं से मूर्खता आरम्भ होती है।

* * * *

जो वीर्य रूपी राजा को अपने काबू में कर लेता है वह समस्त संसार पर अपना दावा रख सकता है। उसके मुखमण्डल पर विचित्र तेज चमकता है। उसके नेत्रों से अद्भुत ज्योति टपकती है। उसमें एक प्रकार की अनोखी क्षमता होती है। वह प्रसन्न, नीरोग और प्रमोदमय जीवन का धनी होता है। उसके धन के सामने चांदी-सोने के टुकड़े किसी गिनती में नहीं हैं।

फाल्गुन कृष्णा १३

वीर्य हमारा माँ-बाप है। वीर्य हमारा ब्रह्म है। वीर्य हमारा तेज है। वीर्य हमारा सर्वस्व है। जो मूर्ख अपने सर्वस्व का नाश कर डालता है उसके बराबर हत्यारा दूसरा कौन है ?

* * * *

वीर्यरक्षा की साधना करने वाले को अपनी भावना पवित्र बनाये रखने की बड़ी आवश्यकता है। वह कुत्सित विचारों को पास न फटकने दे। सदा शुद्ध वातावरण में रहना, शुचि विचार रखना, आहार-विहार सम्बन्धी विवेक रखना ब्रह्मचर्य के साधक के लिए अतीव उपयोगी है। ऐसा किये बिना वीर्य की भलीभाँति रक्षा होना सम्भव नहीं।

* * * *

लोग धर्म का फल तत्काल देखना चाहते हैं और जब वह तत्काल नहीं मिलता तो धर्म पर अनास्था करने लगते हैं। ऐसे लोगों से तो किसान ही अधिक बुद्धिमान् है जो भविष्य पर आशा बाँधकर घर का अनाज खेत में फेंक देता है। उसे अनेकगुना फल मिलता है और उसी पर मनुष्यसमाज का जीवन टिका है।

फाल्गुन कृष्णा १४

एक बूढ़ा हाथ में माला लेकर परमात्मा का नाम जप रहा था। इतने में किसी ने उसे गालियाँ देना शुरु किया। तब बूढ़ा कहने लगा—'देखता नहीं, मैं परमात्मा का नाम जप रहा हूँ। मेरा परमात्मा तेरा नाश कर देगा।'

गाली देने वाला बोला—'परमात्मा क्या तेरा ही है? मेरा नहीं? वह तो मेरा भी है, इसलिए तेरा सर्वनाश कर देगा।'

अब परमात्मा किसका पक्ष लेगा और किसका नाश करेगा?

इस प्रकार की अज्ञानपूर्ण बातों से ही युवकों को धर्म और ईश्वर के प्रति उपेक्षा होती है और इसी कारण वे इनका बहिष्कार करने पर उतारू हो जाते हैं। ऐसा करना युवकों का भूल है पर ईश्वर और धर्म का दुरुपयोग करने वालों की भी कम भूल नहीं है।

* * * *

मानवधर्म वह है जिस पर साम्प्रदायिकता का रंग नहीं चढ़ा है, जिसे निःसंकोचभाव से सभी लोग स्वीकार करते हैं और जिसके विना मनुष्य असंस्कारी-पशुवत् कहलाता है।

फाल्गुन कृष्णा ३०

एक जगह कुरान में लिखा है—'ला तो अजे चोखल-कुल्लाह ।' अर्थात्—हे मुहम्मद ! दुनिया को विश्वास दिला दे कि अल्लाह की दुनिया को कोई सतावे नहीं ।

देखना चाहिए कि अल्लाह की सन्तान कौन है ? क्या हिन्दू उसकी सन्तान नहीं हैं ? अकेले मुसलमान ही अगर अल्लाह की सन्तान हों तो अल्लाह सबका मालिक कैसे ठहरेगा ? जब सारी दुनिया उसी की है तो क्या हिन्दू और क्या मुसलमान—सभी उसी की सन्तान हैं । अगर कोई मुसलमान किसी हिन्दू को सताता है तो हिन्दू कहेगा—क्या तू अपने मालिक को जानता है ? तू अपने मालिक को सारी दुनिया का मालिक कहता है तो क्या उसने किसी को सताने का हुक्म दिया है ? इसी प्रकार अगर कोई हिन्दू, मुसलमान को सताता है तो मुसलमान कहेगा—क्या तुम्हारे परमात्मा ने किसी को सताने की आज्ञा दी है ? क्या तुम्हारा परमात्मा सारे संसार का स्वामी नहीं है ? क्या मैं इस दुनिया में नहीं हूँ, जिसका वह स्वामी है ?

* * * *

सच्चा गुरु वह है जो शिष्य बनाने के लिए किसी को झूठा प्रलोभन नहीं देता ।

फाल्गुन शुक्ला १

धर्म का पहला सबक है—'समस्त प्राणियों को अपने समान समझो।' जो ऐसा समझकर अमल करेगा वह किसी के साथ वैर नहीं करेगा; अन्याय या छल-कपट से किसी को नहीं ठगेगा, सभी को सुखी बनाने की चेष्टा करेगा।

* * * *

शरीर है तो उसका कोई कर्त्ता भी है और उसका जो कर्त्ता है वही आत्मा है। वह आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। आत्मा को जिस धर्म की आवश्यकता है वही 'मानवधर्म' कहलाता है।

* * * *

जो लोग धर्म को समाज का बोझा समझते हैं वे धर्म का सही अर्थ नहीं जानते। वास्तव में धर्म के बिना जीवन ही नहीं टिक सकता। आजकल के जो युवक सुधार करना चाहते हैं उन्हें मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि धर्महीन सुधार कल्याणकारी न होगा और वह समाज को घोर विनाश के गहरे गड्हे में पटक देगा।

फाल्गुन शुक्ला २

प्राचीन काल में पहले सूत्रतः, फिर अर्थतः और फिर कर्मतः शिक्षा दी जाती थी। अन्न किस प्रकार पैदा करना, यह बात शब्द से, अर्थ से और अभ्यास से सिखाई जाती थी। इसी प्रकार की शिक्षा जीवन में सार्थक होती है। अभ्यासहीन पढ़ाई मात्र पंगु है।

* * * *

भारत का सद्भाग्य है कि यहाँ के किसान, धनवानों की तरह ठगविद्या नहीं सीखे हैं। अन्यथा भारतवर्ष को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता!

* * * *

छिपाने की चेष्टा करने से पाप घटता नहीं, वरन् बढ़ता जाता है। पाप के लिए प्रकट रूप से प्रायश्चित्त करने वाला परमात्मा के सन्निकट पहुँचता है।

* * * *

सच्चा श्रीमान् वही है जो अपने आश्रित जनों को भी श्रीमान् बना देता है। परमात्मा अपने सेवक को भी परमात्मा बना देता है।

फाल्गुन शुक्ला ३

वचन और काया के पाप तो आप ही प्रकट हो जाते हैं पर मन के पापों को कौन जानता है ? जब तक मन के पाप नहीं मिट जाते तब तक कैसे कहा जा सकता है कि मैं अपराधी नहीं हूँ ! निरपराध बनने के लिए मानसिक पापों को हटाना और आत्मा को सतत जागृत रखना आवश्यक है ।

* * * *

यह शरीर आत्मा के आसरे ही टिका है । शरीर में जो कुछ होता है आत्मा की शक्ति के कारण ही होता है । यहाँ तक कि आँख का पलक का ऊँचा-नीचा होना भी आत्मा की शक्ति है । तुम आत्मा को चमड़े के नेत्रों से नहीं देख सकते, किन्तु गहरा विचार करने पर विदित होगा कि आत्मशक्ति के द्वारा ही शरीर की समस्त क्रियाएँ होती हैं । जिस आत्मा की ऐसी महिमा है उसी में तुमने झूठ-कपट की विचित्र बातें घुसेड़ ली हैं । जैसे एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं उसी प्रकार झूठ-कपट से भरे आत्मा में दिव्य बल—आत्मबल प्रकट नहीं हो सकता ।

फाल्गुन शुक्ला ४

परमात्मा 'दीन-दयालु' है। इसलिए उसकी प्रार्थना करने वाले को 'दीन' बनना होगा। 'दीन' बने बिना 'दीन-दयालु' की दया प्राप्त नहीं की जा सकती। अभिमानी की वहाँ दाल नहीं गलती।

* * * *

बाहर के पापों को समझना सरल है किन्तु पाप के सूक्ष्म मार्ग को खोज निकालना बड़ा ही कठिन है। बाहर से हिंसा आदि न करके ही अपने को निष्पाप मान बैठना भूल है।

* * * *

सोने के पात्र में ही सिंहनी का दूध टिक सकता है। इसी प्रकार योग्य पात्र में ही प्रभु की शिक्षा ठहर सकती है। अतः प्रमाद और कषाय का परित्याग करके अन्तःकरण को ऐसा सुपात्र बनाओ कि उसमें परमात्मा की शिक्षा स्थायी रूप से ठहर सके।

* * * *

सभी धर्म महान् हैं किन्तु मानवधर्म उन सब में महान् है।

फाल्गुन शुक्ला ५

अवगुणों का नाश करने वाली क्रिया अवगुणों को छिपाने के लिए तो नहीं करता ? हे आत्मा, ऐसी चालाकी करके अगर तू अपने आपको धोखा दे रहा हो तो अब यह चालाकी छोड़ दे। अब अवगुणों का नाश करने के लिए ही क्रिया कर। इसी में तेरा सच्चा कल्याण है।

*　　*　　*　　*

घर में सफाई रखते हो सो ठीक, पर गली-कूचे की सफाई पर क्यों ध्यान नहीं देते ? घर के सामने की गली की गन्दगी का क्या तुम्हारे चित्त पर और शरीर पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता ?

*　　*　　*　　*

काले कपड़े पर लगा हुआ दाग जल्दी दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार जिनका हृदय पापों से खूब भरा है उन्हें अपने पाप दिखाई नहीं देते। जैसे सफेद कपड़े का दाग जल्दी दिखाई देने लगता है उसी प्रकार जिसमें थोड़ा पाप है वह अपने आपको बड़ा पापी मानता है और अपना पाप परमात्मा के सामने पेश कर देता है।

फाल्गुन शुक्ला ६

रोग हो जाने पर रोग को कोसने से कोई लाभ नहीं होता। इसी प्रकार दुःख आ पड़ने पर दुःख को कोसना व्यर्थ है। दुःख का मूल—पाप—समझकर उसे उखाड़ फेंकना ही उचित है।

* * * *

ज्ञानी और विवेकशील पुरुष कष्ट के अवसर पर तनिक भी नहीं घबराते। कष्टों को अपनी जीवनपरीक्षा मानकर वे उनका स्वागत करते हैं और उनसे प्रसन्न होते हैं। वह मानते हैं कि अगर हम कष्टों की इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए तो हमें परमात्मा की भक्ति का प्रमाणपत्र अवश्य मिलेगा।

* * * *

अन्याय, अत्याचार या चोरी करके हाथों में हथकड़ी पहनने वाला अपने कुल को कलङ्कित करता है। मगर अत्याचार-अनाचार को दूर करने के लिए कदाचित् हथकड़ी-बेड़ी पहनना पड़े तो समझना चाहिए कि हमें सेवा के आभूषण पहनने के लिए मिले हैं। सच्चे सेवकों को यह आभूषण अधिक शोभा देते हैं।

फाल्गुन शुक्ला ७

परमात्मा की प्रार्थना से मेरी भावना को बहुत पुष्टि मिली है। प्रार्थना की शक्ति का मैं स्वयं साक्षी हूँ। अगर प्रार्थना द्वारा मैं अपनी अपूर्णता दूर कर सका तो कृतकृत्य हो जाऊंगा।

जब तक बाहर का रूप देखते हो तभी तक बेभान हो जाते हो, जब भीतर गोता मारोगे तो उसी वस्तु से घृणा हुए बिना नहीं रहेगा जिस पर मुग्ध होकर बेभान हो रहे हो।

एक दिन प्रातःकाल चिन्तन करते-करते विचार आया— मैं जिनकी सहायता लेकर जीवन यापन कर रहा हूं, उन्हें भूल जाना कितनी भयंकर भूल होगी ? जिनकी सहायता से यह शरीर चल रहा है उनका ऋण मैं कब अदा कर सकूँगा ?

बाहरी वस्तुएं ही मादक नहीं होतीं, हृदय की भावना भी मद वाली होती है। अतएव मादक वस्तुओं के साथ ही साथ हृदय की उस भावना से भी बचते रहना चाहिए।

फाल्गुन शुक्ला ८

सब नये नियम खराब ही होते हैं या सब पुराने नियम खराब ही होते हैं, यह कोई निश्चय नहीं है। जो नियम जीवन में प्राण पूरने वाला हो उसे कायम रखकर जीवनविघातक तत्वों को दूर करने में ही कल्याण है।

* * * *

परमात्मा की कृपा प्राप्त करने के लिए ही प्रार्थना करना चाहिए। जैसे किसान को धान्य के साथ घास-भूसा भी मिल जाता है, उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना से ईशकृपा के साथ सांसारिक वस्तुएँ भी आप ही मिल जाती हैं।

* * * *

तुम्हारा पेट भोजन से भर गया है फिर भी बची रोटी किसी गरीब को देने की भावना उत्पन्न न हो और सुखाकर रख छोड़ने की इच्छा हो तो समझ लो कि अभी तुम दूसरों को अपने समान नहीं समझते हो।

* * * *

खाद बनाकर किसान गन्दगी का सदुपयोग करता है। क्या तुम गालियों का आत्मकल्याण में उपयोग नहीं कर सकते?

फाल्गुन शुक्ला ६

निष्काम भावना से और सच्चे हृदय से की हुई सेवा कभी व्यर्थ नहीं होती। उसका प्रभाव दूसरों पर बिना पड़े नहीं रहता।

*   *   *   *

आमद से अधिक खर्च करके ऋणी मत बनो। कदाचित् ऋणी बनना ही पड़े तो मियाद से पहले ऋण चुकाओ। ऐसा न किया तो समझ लो कि इज्जत मिट्टी में मिलने जा रही है।

*   *   *   *

प्रार्थना की अद्भुत शक्ति पर जिसे विश्वास है, उसे प्रार्थना के द्वारा अपूर्व वस्तु प्राप्त होती है। बिना विश्वास के की जाने वाली प्रार्थना ढोंग है।

*   *   *   *

अपने लिए जो हितकर है, दूसरों के लिए भी वही हितकर है। अपने लिए पाँच और पाँच दस गिनने वाला और दूसरों के लिए ग्यारह गिनने वाला विश्वासघात करता है, आत्मवंचना करता है और अपने को अपराधी बनाता है।

फाल्गुन शुक्ला १०

बारीकी के साथ प्रकृति का निरीक्षण किया जाय तो आत्मा को अपूर्व शिक्षा मिल सकती है। फूल की नन्ही-सी पांखड़ी में क्या तत्व रहा हुआ है, उसकी रचना किस प्रकार की है और वह क्या शिक्षा देती है, इस पर गहरा विचार किया जाय तो आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा।

* * * *

दूसरे के मुँह से गाली सुनकर अपना हृदय कलुषित मत होने दो। वह भीतर भरी हुई अपनी गन्दगी बाहर निकालता है सो क्या इसलिए कि उसे तुम अपने भीतर डाल लो ?

* * * *

रोटी पकाते समय आग न इतनी तेज रक्खी जाती है कि जिससे रोटी जलकर खाक हो जाए और न इतनी धीमी ही कि रोटी कच्ची रह जाए। बल्कि मध्यम आँच रक्खी जाती है। इसी प्रकार जीवन में आध्यात्मिकता का प्रयोग किया जाय तो जीवनव्यवहार सुन्दर ढङ्ग से मध्यम मार्ग पर चल सकता है। अतएव यह भ्रम दूर कर देना चाहिए कि आध्यात्मिकता के साथ जीवन नहीं निभ सकता।

फाल्गुन शुक्ला ११

जब कोई आवश्यकता आ पड़े या कोई कष्ट सिर पर आ पड़े तो सोचना चाहिये कि परमात्मा की प्रार्थना न करने के ही कारण यह परिस्थिति खड़ी हुई है। इसलिए परमात्मा की प्रार्थना करने में ही मुझे मन लगाना चाहिए।

*   *   *   *

आध्यात्मिकता कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है। समस्त विद्याओं में उसका स्थान पहला है। जो मनुष्य दूसरों की भलाई के लिए मामूली चीज़ भी नहीं त्याग सकता उसके पास आध्यात्मिकता कैसे फटक सकती है? आध्यात्मिकता वहाँ सहज ही आ जाती है जहाँ पर-हित के लिए प्राण तक अर्पण कर देने की उदारता होती है।

*   *   *   *

लोगों की अधिकांश शक्ति मानसिक चिन्ताओं की खुराक बन जाती है। हालांकि आत्मा में अनन्त शक्ति है लेकिन लोग उसके विकास का उपाय भूल गये हैं। आराम के बढ़ते जाने वाले साधनों ने भी शक्ति का बहुत कुछ ह्रास कर दिया है। लोग रेडियो सुनते-सुनते अपना स्वर तक भूल गए हैं।

फाल्गुन शुक्ला १२

कूड़ा-कचरा बाहर न फेंकना और उसमें जीवों की उत्पत्ति होने देना अहिंसाधर्म की दृष्टि से योग्य नहीं है। अहिंसाधर्म क्षुद्र जीवों को उत्पन्न न होने देने की हिमायत करता है।

* * * *

जैसे पौष्टिक पदार्थ शक्ति देते हैं उसी प्रकार निन्दा भी, अगर उससे मनुष्य घबरा न जाय तो, शक्ति प्रदान करती है। मनुष्य के विकास में निन्दा भी एक साधन है।

* * * *

जब मैं किसी श्रावक का घर देखता हूँ तो विचार आने लगता है—क्या सच्चे श्रावक का घर गन्दा रह सकता है? लोग कहते हैं—सफाई न करना भंगी का दोष है। पर मैं कहता हूँ—गन्दगी फैलाने वाला तो दोषी नहीं और सफाई करने वाला दोषी है, यह कहाँ का न्याय है?

* * * *

परमात्मा के प्रति निश्चल श्रद्धा रखने से श्रद्धावान् स्वयं परमात्मपद प्राप्त कर लेता है।

फाल्गुन शुक्ला १३

परमात्मा की प्रार्थना सद्भाव के साथ की जाय, किसी प्रकार का धोखा उसमें न हो तो आत्मा संसार की भूलभुलैया में कभी भटके ही नहीं। प्रार्थना करते समय इस बात का खयाल रखना चाहिए कि आत्मा की एक अशुद्धि दूर करने चलें तो दूसरी अशुद्धि न आ घुसे।

* * * *

बुद्धिसिद्धान्त और जीवनसिद्धान्त अलग-अलग वस्तुएँ हैं। अतएव बुद्धि के सिद्धान्त के साथ जीवन के सिद्धान्त का भी उपयोग करना चाहिए।

* * * *

आज लोगों की बुद्धि बहिर्मुख हो गई है। बुद्धि दृश्यमान पदार्थों को पकड़ने दौड़ती है। लेकिन बाह्य पदार्थों को पकड़ने से आत्मा की खोज नहीं हो सकती और न कल्याण ही हो सकता है।

* * * *

संसार के समस्त सम्बन्ध कल्पना के खेल हैं।

फाल्गुन शुक्ला १४

जिन ज्ञानियों ने अपनी बुद्धि अन्तर्मुखी बनाई है, उनके मुँह की ओर देखोगे तो पता चलेगा कि अमृतमय भावना के कारण उनका मुँह कितना प्रफुल्लित और आनन्दित दिखाई देता है। जिस दुःख को दुनिया पहाड़-सा भारी समझती है, वह सिर पर आ पड़ने पर भी जिस भावना का आसरा लेकर वे प्रसन्न और आनन्दमग्न बने रहते हैं, उस भावना की खोज करो।

* * * *

सांसारिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए की जाने वाली प्रार्थना सच्ची शान्ति नहीं पहुँचा सकती। अतएव किसी भी सांसारिक कार्य में शान्ति की कल्पना करके उसी शान्ति के लिए प्रार्थना करना छोड़ो। उस सच्ची शान्ति के लिए ईश्वर की प्रार्थना करो जिससे हृदय की समस्त उपाधियाँ दूर हो जाएँ और आत्मा को सच्चा सुख प्राप्त हो।

* * * *

अधर्म की वृद्धि से धर्म में नया जीवन आता जाता है। पाप के बढ़ने से ज्ञानियों की महिमा बढ़ती है।

फाल्गुन शुक्ला १५

तुम्हारे कान पराई निन्दा, लड़ाई, सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं या परमात्मा का गुणगान सुनने के लिए ? अगर निंदा सुनने को उत्सुक रहते हैं तो समझ लो कि तुम अब भी कुमार्ग पर हो ।

* * * *

अपनी आँखें सफल करनी हों तो आँखों द्वारा प्राणीमात्र को प्रभुमय देखो । जब सब प्राणी प्रभुमय दिखाई देने लगें तो समझना चाहिए कि आंखें पाना सफल हो गया ।

* * * *

पापी, दुष्ट और दुरात्मा को भी अपने समान मानकर उसके भी उद्धार की भावना रखने वाला ही सद्गुरु है । उसे कोई माने या न माने, वह तो यही कहता है—भाई, तू घबरा मत । तूने जो कुछ गँवाया है वह तो ऊपर-ऊपर का ही है । तेरी आन्तरिक स्थिति तो परमात्मा के समान ही है ।

* * * *

असल में सुखी वही है जिसने ममता पर विजय प्राप्त करली है ।

चैत्र कृष्णा १

आत्मा ईश्वर की आभा है। आत्मा न होता तो ईश्वर की चर्चा न होती। जो शक्ति ईश्वर में है वही सब आत्माओं में भी है। आत्मा की शक्ति पर आवरण है, ईश्वर निरावरण है।

* * * *

अपने विरोधियों को काबू में करने का और साथ ही उनके प्रति न्याय करने का अमोघ साधन अनेकान्तवाद है। अनेकान्तवाद अपने विरोधियों को भी अमृतपान कराकर अमर बनाता है। सीधी-सादी भाषा में उसे समन्वयबुद्धि कह सकते हैं।

* * * *

जब तक अहंकार है तब तक भक्ति नहीं हो सकती। अहंकार की छाया में परमात्मप्रेम का अंकुर नहीं उगता। अहंकार अपने प्रति घना आकर्षण है—आग्रह है और प्रेम में उत्सर्ग चाहिए।। अहंकार में मनुष्य अपने आपको पकड़कर बैठता है, अपना आपा खोना नहीं चाहता और प्रेम में आपा खोना पड़ता है। ऐसी दशा में अहंकार और प्रेम या भक्ति एक जगह कैसे रहेंगे?

चैत्र कृष्णा २

कितनेक युवकों का कहना है कि संसार को धर्म और ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। धर्म और ईश्वर से बड़ी हानि हुई है। कई लोग ऐसा मानने वालों को भ्रष्ट युवक कहते हैं। मगर गहरा विचार करने स जान पड़ता है कि धर्म और ईश्वर का बहिष्कार करने वाले युवक ही अकेले अपराधी नहीं हैं; वरन् जो लोग अपने को धर्म का पालनकर्त्ता और रक्षणकर्त्ता मानते हैं किन्तु उसे ठीक रूप से पालन नहीं करते उनका भी अपराध कम नहीं है। लोग धर्म का ठीक तरह पालन करें तो विरोधियों को कुछ कहने की गुंजाइश ही न रहे। धर्म और ईश्वर के सच्चे भक्तों की अमृतमयी दृष्टि का दूसरों पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

* * * *

अगर कोई दूसरी भाषा हमारी मातृभाषा को सम्मानित करती है अथवा उसकी सखी बनना चाहती है तो उस भाषा का भी सम्मान किया जायगा। मगर जो भाषा हमारी मातृभाषा को दासी बनाने के लिए उद्यत हो रही हो उसे कैसे सम्मान दिया जा सकता है?

चैत्र कृष्णा ३

तमाम धर्म मानवधर्म सारवने के साधन हैं। जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता है, मानव को तुच्छ समझना सिखलाता है, वह धर्म नहीं है। धर्म में ऐसी बातों को स्थान नहीं है।

* * * *

जैसे अबोध बालक साँप को खिलौना समझकर हाथ में उठा लेता है उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष आत्मा के शत्रुओं को स्नेह के साथ गले लगाता है।

* * * *

परमात्मा से साक्षात्कार करने के अनेक उपाय बताये गये हैं, लेकिन सबसे सरल मार्ग यही है कि आत्मा में परमात्मा के प्रति परिपूर्ण प्रेम जाग्रत हो जाय। वह प्रेम ऐसा होना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति में ईश्वर का ध्यान खण्डित न होने पावे।

* * * *

हृदय के पट खोलो और जरा सावधानी से देखो तो तुम्हें अपना हृदय ही दयादेवी का मन्दिर दिखाई देगा।

चैत्र कृष्णा ४

आत्मविजय के पाँच मन्त्रों का संक्षिप्त सार यह है :—

(१) पहला मन्त्र—स्वतन्त्र बनो, स्वतन्त्र बनाओ और स्वतन्त्र बने हुए महापुरुषों के चरणचिह्नों पर चलो।

(२) दूसरा मन्त्र—पराधीन मत बनो, पराधीन मत बनाओ, पराधीन का पदानुसरण मत करो।

(३) तीसरा मन्त्र—संघशक्ति को सुदृढ़ बनाओ।

(४) चौथा मन्त्र—संघशक्ति को पुष्ट बनाने के लिए विवेकबुद्धि का उपयोग करो, कदाग्रह के स्थान पर समन्वय को स्थान दो।

(५) पाँचवाँ मन्त्र—अपनी आत्मिकशक्ति में दृढ़विश्वास रक्खो, बाहर की लुभावनी शक्ति का भरोसा मत करो। विजय की आकांक्षा मत त्यागो और विजय प्राप्त करते चलो।

* * * *

किसी भी प्रकार की पराधीनता के आगे, चाहे वह सामाजिक हो या धार्मिक हो, नतमस्तक नहीं होना चाहिए। यही नहीं, साक्षात् ईश्वर की भी पराधीनता अङ्गीकार करने योग्य नहीं है।

चैत्र कृष्णा ५

पनिहारी चलती है, बोलती है, हँसती है, तथापि वह कुम्भ को नहीं भूलती। इसी प्रकार संसार-व्यवहार करते समय भी ईश्वर का विस्मरण नहीं करना चाहिए।

* * * *

मनुष्य धर्म का पालन करता है सो इसलिए नहीं कि वह अपने आपको ऊँचा ठहराने की कोशिश करे, बल्कि इसलिए कि वह वास्तव में ऊँचा बने। धर्मपालन का उद्देश्य वह उत्कृष्ट मनोदशा प्राप्त करना है जिसमें विश्वबन्धुत्व का भाव मुख्य होता है।

* * * *

तुम्हारे लिए जो अनिष्ट है वह दूसरे के लिए भी अनिष्ट है। अगर तुम सड़ा पानी नहीं पी सकते तो दूसरा मनुष्य भी उसे नहीं पी सकता। अगर तुम बीमारी में दूसरों की सहायता चाहते हो तो दूसरा भी यही चाहता है।

* * * *

क्रिया के विना ज्ञान निष्फल है और ज्ञानहीन क्रिया अंधी है।

चैत्र कृष्णा ६

संसार को आत्मविजय का जयनाद सुनाने वाला और सर्वोत्कृष्ट स्वतन्त्रता का राजमार्ग दिखलाने वाला जयशील धर्म ही जैनधर्म कहलाता है।

*   *   *   *

ईश्वर का भजन करने वाले दो तरह के होते हैं। एक ईश्वर के नाम की माला फेरने वाले और दूसरे ईश्वर की आज्ञा के अनुसार व्यवहार करने वाले। इन दो तरह के भक्तों में से ईश्वर किस पर प्रसन्न होगा? ईश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले पर। ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करके उसके नाम की माला जप लेने मात्र से कल्याण नहीं हो सकता।

*   *   *   *

धर्म का नाम लेकर कर्त्तव्यपालन के समय कर्त्तव्यभ्रष्ट होने वाला, नीति-मर्यादा को भी तिलांजलि दे बैठने वाला धर्म के नाम पर ढोंग करता है। वह धर्म का सम्मान नहीं करता—अपमान करता है।

*   *   *   *

माता, पुत्र की सेवा करके उसे जन्म देने के पाप को दूर करती है।

चैत्र कृष्णा ७

जो सेवक निष्काम होता है, बेलाग रहता है, उसकी सेवा से सभी वश में हो जाते हैं, भले ही वह ईश्वर ही क्यों न हो।

* * * *

आपकी नज़र में वह नाचीज़ ठहरेगा, जिसके पास कौड़ी भी न होगी, लेकिन जिसने कौड़ी भी रखने की चाहना नहीं की वही महात्मा है।

* * * *

अगर आपका अस्तित्व शरीर से भिन्न न होता अर्थात् शरीर ही आत्मा होता तो मृतक शरीर और जीवित शरीर में कुछ अन्तर ही न होता। जीवित और मृत शरीर में पाया जाने वाला अन्तर यह सिद्ध कर देता है कि शरीर से भिन्न कोई और तत्त्व है। वही सूक्ष्म तत्व आत्मा है।

* * * *

राष्ट्र की रक्षा में हमारी रक्षा है और राष्ट्र के विनाश में हमारा विनाश है।

चैत्र कृष्णा ८

जड़ को जड़ कहने वाला आत्मा है। आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित करने वाला आत्मा है। यही नहीं, आत्मा का निषेध करने वाला भी आत्मा ही है।

*　　*　　*　　*

हे आत्मन्! शरीर तेरे निकट है, तेरा उपकारक है, सहायक है, तू उसे खिलाता-पिलाता है, सशक्त बनाता है। इसीलिए क्या तू और शरीर मूलतः एक हो जाएँगे? अन्त समय स्थूल शरीर यहीं पड़ा रह जायगा और तू अन्यत्र चला जायगा। दोनों का स्वरूप अलग-अलग है। एक रूपी है, दूसरा अरूपी है। एक जड़ है, दूसरा चेतन है।

*　　*　　*　　*

श्रद्धागम्य वस्तुतत्व केवल श्रद्धा से ही जाना जा सकता है। तर्क का उसमें वश नहीं चलता। तर्क तो वह तराजू है जिस पर स्थूल पदार्थ ही तोले जा सकते हैं। तर्क में स्थिरता भी नहीं होती। वह पारे की तरह चपल है। सर्वत्र उसका साम्राज्य स्वीकार करने से मानवसमाज अत्युपयोगी और गूढ़ तत्व से अपरिचित ही रह जायगा।

चैत्र कृष्णा ६

परमात्मा की प्रार्थना जीवन और प्राण का आधार है। प्रार्थना ही वह अनुपम साधन है जिसके द्वारा प्राणी आनन्द-धाम में स्वच्छन्द विचरण करता है। जो प्रार्थना प्राणरूप बन जाती है वह भले ही सीधी-सादी भाषा में कही गई हो, सदैव कल्याणकारिणी होगी।

*   *   *   *

आनन्द आत्मा का ही गुण है। परपदार्थों के संयोग में उसे खोजना भ्रम है। परसंयोग जितना ज्यादा, सुख उतना ही कम होगा। परसंयोग से पूर्णरूपेण छुटकारा पा जाने पर अनन्त आनन्द का आविर्भाव होता है।

*   *   *   *

पापी को अपनाना ही उसके पाप को नष्ट करना है। घृणा करने से उसके पाप का अन्त आना कठिन है। अगर उसे आत्मीय भाव से ग्रहण करोगे तो उसका सुधार होना सरल होगा। चाहे कोई ढेड हो, चमार हो, कसाई हो, कैसा भी पापी क्यों न हो, उसे सम्मानपूर्वक धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए उत्साहित करना चाहिए।

चैत्र कृष्णा १०

निर्मल अन्तःकरण में भगवान् के प्रति उत्कृष्ट प्रीतिभावना जब प्रबल हो उठती है तब स्वयं ही जिह्वा स्तवन की भाषा उच्चारण करने लगती है। स्तवन के उस उच्चारण में हृदय का रस मिला रहता है।

* * * *

जो पुरुष शक्ति होते हुए भी अपने सामने अपराध होने देता है, जो अपराध का प्रतीकार नहीं करता, वह अपराध करने वाले के समान ही पापी है।

कुलीन स्त्रियाँ जहाँ तक उनसे बन पड़ता है, भाई-भाई में विरोध उत्पन्न नहीं होने देतीं। यही नहीं, वरन् उत्पन्न हुए विरोध को शान्त करने का प्रयत्न करती हैं।

अगर राम (आत्मा) का बल प्रबल न होता तो जगत् में सत्य की प्रतिष्ठा किस पर होती? धर्म की स्थिरता किस आधार पर होती?

चैत्र कृष्णा ११

भारत में छह करोड़ आदमी भूखों मरते हैं। अगर चौबीस करोड़ भी प्रतीदिन भोजन करते हैं तो अगर वे भगवान् महावीर की आज्ञा के अनुसार महीने में छह पूर्ण उपवास कर लें तो एक भी आदमी भूखा न रहे।

* * * *

संघ-शरीर के सङ्गठन के लिए सर्वस्व का त्याग करना भी कोई बड़ी बात नहीं है। संघ के सङ्गठन के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने में भी पीछे पैर नहीं रखना चाहिए। संघ इतना महान् है कि उसके संगठन के हेतु आवश्यकता पड़ने पर पद और अहङ्कार का मोह न रखते हुए, इन सबका त्याग कर देना श्रेयस्कर है।

* * * *

न जाने अस्पृश्यता कहाँ से और कैसे चल पड़ी है, जिसने भारतीय जनसमाज की एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया और जो भारतवर्ष के विकास में बड़ी बाधा बनी हुई है। इससे समाज का उत्थान कठिन हो गया है। अब लोग अस्पृश्यता को धर्म का अङ्ग समझने लगे हैं।

चैत्र कृष्णा १२

भारत ही अहिंसा का पाठ सिखा सकता है, किसी दूसरे देश की संस्कृति में यह चीज़ ही नज़र नहीं आती। बन्धुता का जन्म भारत में ही हुआ है। भारतीय स्त्रियों ने ही शान्ति और प्रसन्नता के साथ लाठियों की मार खाकर दुनिया को अहिंसा की महत्ता दिखलाई है। ऐसी क्षमता किसी विदेशी नारी में है ?

* * * *

सङ्घ, शरीर के समान है। साधु उसके मस्तक हैं, साध्वियाँ भुजाएँ हैं, श्रावक उदर के स्थान पर हैं और श्राविकाएँ जंघा हैं। जब तक सब अवयव एक-दूसरे के सहायक न बनें तब तक काम नहीं चलता।

मस्तक में ज्ञान हो, भुजा में बल हो, पेट में पाचनशक्ति हो और जंघा में गतिशीलता हो तो अभ्युदय में क्या कसर रह जाएगी ?

* * * *

तन और धन से मोह हटा लेने से वह कहीं चले नहीं जाते, किन्तु उन पर सच्चा स्वामित्व प्राप्त होता है।

चैत्र कृष्णा १३

अहिंसा देवी की वात्सल्यमयी गोदी में जब प्रत्येक राष्ट्र सन्तान की भाँति लोटेगा, तभी उसमें सच्चा बन्धुत्व पनप सकेगा। अहिंसा भगवती ही बन्धुत्व का अमृत संचार कर सकती है। अहिंसा माता के अतिरिक्त और किसी का सामर्थ्य नहीं कि वह बन्धुभाव का प्रादुर्भाव कर सके और आत्मीयता का सम्बन्ध विभिन्न राष्ट्रों एवं विभिन्न जातियों में स्थापित कर सके।

* * * *

जो स्त्री अपने सतीत्व को हीरे से बढ़कर समझती है, उसकी आँखों में तेज का ऐसा प्रकृष्ट पुंज विद्यमान रहता है कि उसका सामना होते ही पापी की निर्बल आत्मा थर-थर काँपने लगती है।

* * * *

ऐ रोने वालो! कहीं रोने से भी बेटा मिलता है? महावीर के शिष्यों में वीरता होनी चाहिए। लेकिन वीरता की जगह नपुंसकता क्यों दिखाई देती है? नपुंसकता के बल पर धर्म नहीं दिपाया जा सकता।

चैत्र कृष्णा १४

संसार रक्तलीला से घबराया हुआ है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का, एक जाति दूसरी जाति का और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का गला काटते-काटते घबरा चुका है। विश्व के इतिहास के पन्ने रक्त की लालिमा से रंगे हुए हैं। दुनिया की प्रत्येक मौजूदा शासनपद्धति खून-खच्चर की भयावह स्मृति है। कौनसा राज्य है जिसकी नींव खून से न सींची गई हो? कौनसी सत्ता है जो मनुष्य का खून पिये बिना मोटी-ताज़ी बन गई हो? आज सारा संसार ही जैसे वध, ध्वंस, विनाश और संहार के बल पर संचालित हो रहा है। यह स्थिति घबराहट पैदा करने वाली है। आखिर मनुष्य यह स्थिति कब तक सहन करता रहेगा?

इस असह्य स्थिति का नाश करना शायद भारत के भाग्य में लिखा है। भारत ही मनुष्य की इस पशुता का नाश करने में नेतृत्व करेगा। भारत की संस्कृति में अहिंसा को जो उच्चतर स्थान प्राप्त है, भगवान् महावीर ने अहिंसा का जो आदर्श जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया है, वही आदर्श भारतीयों को आगे आने में प्रेरक बनेगा।

चैत्र कृष्णा ३०

लोग समय का ठीक-ठीक विभाग नहीं करते, इस कारण उनका जीवन अस्तव्यस्त हो रहा है। दिन-रात के चौबीस घंटे होते हैं। नींद लिए विना काम नहीं चल सकता, अतएव छह घंटे नींद में गये। विना आजीविका के भी काम नहीं चलता, इसलिए छह घंटे आजीविका के निमित्त निकल गये। शेष बारह घंटे बचे। इनमें से छह घंटे आहार-विहार स्नान आदि में व्यय हो गये, क्योंकि इनके विना भी जीवननिर्वाह नहीं हो सकता। तब भी छह घंटे बचे रहते हैं। यह छह घंटे आप मुझे दे दीजिए। इतना समय नहीं दे सकते तो चार ही घंटे दीजिए। यह भी न हो सके तो दो और अन्ततः कम से कम एक घंटा तो दे ही दीजिए। इतना समय भी धर्मकार्य में न लगाया तो अन्त में घोर पश्चात्ताप ही हाथ लगेगा।

* * * *

जो शस्त्र का प्रयोग करता है उसे शस्त्र का भय बना ही रहता है। इसके विपरीत जो शस्त्र रखता ही नहीं—जो शस्त्रों द्वारा दूसरों को भयभीत नहीं करता, उसे शस्त्र भयभीत नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, जिसने शस्त्रभय पर 'विजय' प्राप्त कर ली है उसके सामने शस्त्र भोंथरे हो जाते हैं।

चैत्र शुक्ला १

जिससे किसी प्रकार का लड़ाई-झगड़ा नहीं है, उनसे क्षमायाचना करके परम्परा का पालन कर लिया जाय और जिनसे लड़ाई है, जिनके अधिकारों का अपहरण किया है, अधिकारों के अपहरण के कारण जिन्हें घोर दुःख पहुंचा है और उन अधिकारों को सिपुर्द कर देने से उन्हें आनन्द होता है, उन लोगों को उनके उचित अधिकार न लौटाकर ऊपर से क्षमा माँग लेना उचित नहीं है। ऐसा करना सच्ची क्षमायाचना नहीं है।

* * * *

संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्तियों ने अपना सम्पूर्ण बल लगाकर युद्ध किया परन्तु फल क्या हुआ? क्या वैर का अन्त हुआ? नहीं, बल्कि वैर की वृद्धि हुई है। भौतिक बल के प्रयोग का परिणाम इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।

* * * *

बहिनो! तुम जगत् की जननी हो, संसार की शक्ति हो, तुम्हारे सद्गुणों के सौरभ से जगत् सुरभित है। तुम्हीं समाज की पवित्रता और उज्ज्वलता कायम रख सकती हो।

चैत्र शुक्ला २

बहिनो ! शील का आभूषण तुम्हारी शोभा बढ़ाने के लिए काफी है । तुम्हें और आभूषणों का लालच नहीं होना चाहिए । आत्मा की आभा बढ़ाओ । मन को उज्ज्वल करो । हृदय को पवित्र भावनाओं से अलंकृत करो । इस मांसपिंड (शरीर) की सजावट में क्या पड़ा है ? शरीर का सिंगार आत्मा को कलङ्कित करता है । तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी ।

* * * *

यदि आप धनिकों के पापों को और आजीविका के निमित्त पाप करने वालों के पापों को न्याय की तराजू पर तोलेंगे तो धनिकों के पापों का ही पलड़ा नीचा रहेगा । उनके पापों की तुलना में गरीबों के पाप बहुत थोड़े-से मालूम पड़ेंगे ।

* * * *

युद्ध की समाप्ति का अर्थ है विरोधी पक्षों में मित्रता की स्थापना हो जाना—शत्रुता का समाप्त हो जाना । युद्धभूमि के बदले अन्तःकरण में लड़ा जाने वाला युद्ध समाप्त हुआ नहीं कहलाता ।

चैत्र शुक्ला ३

परस्त्रीगामी पुरुष नीच से नीच हैं और देश में पाप का खप्पर भरने वालों में अगुवा हैं। ऐसे दुष्ट लोग अपना ही नाश नहीं करते वरन् दूसरों का भी सत्यानाश करते हैं। इन हत्यारों की रोमांचकारिणी करतूतों को सुनकर हृदय थर्रा उठता है। दुनिया की अधिकांश बीमारियाँ फैलाने वाले यही रोग-कीटाणु हैं।

* * * *

जीवन का प्रत्येक क्षण—चौबीसों घंटे ईश्वर की प्रार्थना करते-करते ही व्यतीत होने चाहिए। एक श्वास भी बिना प्रार्थना का नहीं जाना चाहिए। प्रार्थना में जिनका अखंड ध्यान वर्त्तता है उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन है। हम में जब तक जीवन है, जब तक जीवन में उत्साह है, जब तक शक्ति है. यही भावना विद्यमान रहना चाहिए कि हमारा अधिक से अधिक समय प्रार्थना करते-करते ही बीते।

* * * *

न जाने निसर्ग ने किन उपादानों से जननी के अन्तःकरण का निर्माण किया है!

चैत्र शुक्ला ४

दुःख एक प्रकार का प्रतिकूल संवेदन है। जिस घटना को प्रतिकूल रूप में संवेदन किया जाता है वही घटना दुःख बन जाती है। यही कारण है कि एक ही घटना विभिन्न मानसिक स्थितियों में विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करती है।

* * * *

दया में घृणा को कतई स्थान नहीं है। अन्तःकरण में जब दया का निर्मल स्रोत बहने लगता है तब घृणा आदि के दुर्भाव न जाने किस ओर बह जाते हैं।

* * * *

विलासमय जीवन व्यतीत करके विलास की ही गोद में मरने वाला उस कीट के समान है जो अशुचि में ही उत्पन्न होकर अन्त में अशुचि में ही मरता है।

* * * *

पुत्र को जन्म देना एक महान् उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेना है। पुत्र को जन्म देकर उसे सुसंस्कारी न बनाना घोर नैतिक अपराध है।

चैत्र शुक्ला ५

जिन्होंने परमहंस की वृत्ति स्वीकार करके, स्व-परभेदविज्ञान का आश्रय लेकर अपनी आत्मा को शरीर से पृथक् कर लिया है, जो शरीर को भिन्न और आत्मा को भिन्न अनुभव करने लगते हैं, उन्हें शारीरिक वेदना विचलित नहीं कर सकती।

* * * *

दया कहती है—जहाँ कहीं दुखिया को देखो वहीं मेरा मन्दिर समझ लो। दुखिया का मन ही मेरा मन्दिर है। मैं ईंट और चूने के कारागार में कैद नहीं हूँ। जड़ पदार्थों में मेरा वास नहीं है। मैं जीते-जागते प्राणियों में वास करती हूँ।

* * * *

परमात्मा और दया का कहना है कि दुःखी को देखकर जिसका हृदय न पसीजे, जिसके हृदय में मृदुता या कोमलता न आवे, वह यदि मुझे रिझाना चाहता है तो मैं कैसे रीझ सकता हूँ?

* * * *

गरीबों पर घृणा आना ही नरक है।

चैत्र शुक्ला ६

दया का दर्शन करना हो तो गरीब और दुःखी प्राणियों को देखो। देखो, न केवल नेत्रों से वरन् हृदय से देखो। उनकी विपदा को अपनी विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा निवारण करने की चेष्टा करते हो वैसे ही उनकी विपदा निवारण करने के लिए यत्नशील बनो।

* * * *

वह व्यापारी कितना आदर्श है जो सिर्फ समाज-सेवा के लिए ही व्यापार करता है ? आनन्द श्रावक ने पहले गरीबों से लेकर फिर दान देने के बदले नफा न लेने का प्रण करना ही उचित समझा, जिससे किसी को अपनी हीनता न खटके, किसी के गौरव को क्षति न पहुँचे और कोई अपने आपको उपकृत समझकर ग्लानि का अनुभव न करे।

* * * *

दया-देवी की अनुपस्थिति में ज्ञान, अज्ञान कहलाता है। इन्द्रियदमन करना ही सच्चा ज्ञान है। इसके बिना ज्ञान निरर्थक है—बोझ है, जो उलटी परेशानी पैदा करके मनुष्य का शत्रु बन जाता है।

चैत्र शुक्ला ७

जब दया-देवी ज्ञान-सिंह पर आरूढ़ होकर और तप का त्रिशूल लेकर प्रकट होगी तब वह अपने विरोधी दल को—अज्ञान, असंयम, आलस्य आदि को—कैसे बचा रहने देगी ?

* * * *

अहिंसा का पालन करो। जीवन को सत्य से ओतप्रोत बनाओ। जीवन-रूपी महल की आधारशिला अहिंसा और सत्य हो। इन्हीं की सुदृढ़ नींव पर अपने अजेय जीवन-दुर्ग का निर्माण करो। विलासिता तजो। संयम और सादगी को अपनाओ।

* * * *

लोगों ने समझ रक्खा है कि यदि पैसा नहीं कमाना है तो फिर व्यापार ही क्यों किया जाय ? ऐसा सोचने वाले व्यक्तिगत स्वार्थ से आगे कुछ नहीं सोचते।

* * * *

अशाश्वत शरीर की रक्षा के निमित्त शाश्वत धर्म का नाश मत करो।

चैत्र शुक्ला ८

जिस दुनिया में दया, क्षमा, सहानुभूति, परोपकार आदि भावनाओं का सर्वथा अभाव हो, लोग अज्ञान में डूबे हों, नीति और धर्म का जहाँ नामनिशान तक न हो, उस दुनिया की कल्पना करो। वह नरक से भला क्या अच्छी हो सकती है!

* * * *

मनमाना खाना तो सही, पर व्यापार न करना धर्म को कलंकित करना है। धर्म परिश्रम त्याग कर परिश्रम के फल को अनायास भोगने का उपदेश नहीं देता। धर्म अकर्मण्यता नहीं सिखाता। धर्म हरामखोरी का विरोध करता है।

* * * *

कपटनीति से काम लेने वाले की विजय कभी न कभी पराजय के रूप में परिणत हुए बिना नहीं रहेगी। वह अपने कपट का आप ही शिकार बन जायगा।

* * * *

मेरी एकमात्र यही आकांक्षा है कि मेरे अन्तःकरण की मलीमस वासनाओं का विनाश हो जाय।

चैत्र शुक्ला ६

असत्य साहसशील नहीं होता। वह छिपना जानता है, बचना चाहता है, क्योंकि असत्य में बल नहीं होता। निर्बल का आश्रय लेकर कोई कितना निर्भय हो सकता है ?

* * * *

सत्य अपने आप में बलशाली है। जो सत्य को अपना अवलम्बन बनाता है—सत्य के चरणों में अपने प्राणों को सौंप देता है, उसमें सत्य का बल आ जाता है और वह इतना सबल बन जाता है कि विघ्न और बाधाएँ उसका पथ रोकने में असमर्थ सिद्ध होती है। वह निर्भय सिंह की भाँति निःसंकोच होकर अपने मार्ग पर अग्रसर होता चला जाता है।

* * * *

आत्मा जब अपने समस्त पापों को नष्ट कर डालता है, उसकी समस्त औपाधिक विकृतियाँ नष्ट हो जाती हैं और जब वह अपने शुद्ध स्वभाव में आ जाता है, तब आत्मा ही परमात्मा या ईश्वर बन जाता है। जैनधर्म का यह मन्तव्य है इसलिए जैनधर्म चरमसीमा का विकासवादी धर्म है। वह नर के सामने ईश्वरत्व का लक्ष्य उपस्थित करता है।

चैत्र शुक्ला १०

जिसके प्रति हमारी आदरबुद्धि होती है, उसी के गुणों का अनुकरण करने की भावना हम में जागृत होती है और शनैः-शनैः वही गुण हमारे भीतर आ जाते हैं। उसी के आचरण का अनुसरण किया जाता है। इस दृष्टि से, जिसकी निष्ठा परमात्मा में प्रगाढ़ होगी, उसके सामने परमात्मा का ही सदा आदर्श बना रहेगा और वह उन्हीं के आचार-विचार का अनुकरण करेगा। इससे उसे परमात्मपद की प्राप्ति हो सकेगी।

* * * *

धर्म की उपासना करने पर भी कदाचित् कोई कामना सिद्ध न हो, तो भी धर्म निरर्थक नहीं जाता। धर्म अमोघ है। धर्म का फल कब और किस रूप में प्राप्त होता है, यह बात छद्मस्थ भले ही न जान पावे, फिर भी सर्वज्ञ की वाणी सत्य है। धर्म निष्फल नहीं है।

* * * *

आध्यात्मिक विचार के सामने तर्क-वितर्क का कोई मूल्य नहीं है। यह विश्वास का विषय है। हृदय की वस्तु का मस्तिष्क द्वारा निरीक्षण-परीक्षण नहीं किया जा सकता।

चैत्र शुक्ला ११

आपको भगवान् से अभीष्ट भिक्षा तभी मिलेगी जब आप सत्य और सरलभाव से उससे प्रार्थना करेंगे। अगर आप उसके साथ छलपूर्ण व्यवहार करेंगे तो आपके लिए भी छल ही प्रतिदान है। परमात्मा के दरबार में छल का प्रवेश नहीं। छल वहाँ से सीधा लौटता है और जहाँ से उसका उद्भव होता है वहीं आकर विश्राम लेता है।

*　　*　　*　　*

धर्मनीति का आचरण करना और कराना और उसके द्वारा विश्व में शान्ति का प्रसार करना तथा जीवन को क्षुद्र उद्देश्यों के ऊपर, उन्नत आदर्श की ओर ले जाना साधुओं का उद्देश्य है। लेकिन गांधीजी ने राजनीति का धर्मनीति के साथ समन्वय करने का प्रशस्त प्रयास किया है। उन्होंने प्रजा एवं राजा के खून से लिप्त, वारांगना के समान छल-कपट द्वारा अनेक रूपधारिणी और प्रलयंकारिणी राजनीति के स्वभाव में साम्यभाव और सरलता लाने का प्रयोग किया है। अगर यह प्रयोग सफल होता है तो यह धर्म की महान् सफलता होगी। धर्म की इस सफलता से साधु यदि प्रसन्न न होंगे तो और कौन होगा?

चैत्र शुक्ला १२

चिन्ताओं से ग्रस्त होकर—दुःख से अभिभूत होकर ईश्वर की भक्ति करने वाला भक्त 'आर्त्त' कहलाता है। किसी कामना से प्रेरित होकर भक्ति करने वाला 'अर्थार्थी' है। ईश्वरीय स्वरूप को साक्षात् करने और उसे जानने के लिए भक्ति को साधन बनाकर भक्ति करने वाला 'जिज्ञासु' कहा जाता है और आत्मा तथा परमात्मा में अभेद मानकर—दोनों की एकता निश्चित कर—भक्ति करने वाला 'ज्ञानी' है।

* * * *

भरोसा रक्खो, तुम्हारी समस्त आशाएँ धर्म से ही पूरी होंगी और जो आशाएँ धर्म से पूरी न होंगी वे किसी और से भी पूरी न हो सकेंगी।

आम को सींचने से भी यदि आम फल नहीं देता तो बबूल को सींचो भले, पर आम्रफल तो उससे नहीं ही मिल सकेंगे।

* * * *

तुम बाहर के शत्रुओं को देखते हो, पर भीतर जो शत्रु छिपे बैठे हैं, उन्हें क्यों नहीं देखते? वही तो असली शत्रु हैं।

चैत्र शुक्ला १३

सम्भव है कि जिस कार्य में तुम सफलता चाहते हो उस कार्य की सफलता से तुम्हारा अहित होता हो और असफलता में ही हित समाया हो। ऐसे कार्यों में रुकावट पड़ जाने में ही कल्याण है। ऐसी अवस्था में धर्म पर अश्रद्धा मत करो।

* * * *

माता-पिता का अपनी सन्तान पर असीम उपकार है। भला, जिन्होंने तन दिया है, तन को पाल-पोस कर सबल किया है, जिन्होंने अपना सर्वस्व सौंप दिया है, उनके उपकार का प्रतीकार किस प्रकार किया जा सकता है ?

* * * *

माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नहीं होता। माता के हृदय में बहने वाला वात्सल्य का अखण्ड झरना कभी सूख नहीं सकता। वह सदैव प्रवाहित होता रहता है।

माता का प्रेम सदैव अतृप्त रहने के लिए है और उसकी अतृप्ति में ही शायद जगत् की स्थिति है। जिस दिन मातृ-हृदय सन्तान-प्रेम से तृप्त हो जायगा, उस दिन जगत् में प्रलय हो जायगा।

चैत्र शुक्ला १४

वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों की संख्या में दिनोंदिन जो वृद्धि हो रही है, उसका प्रधान कारण भोजन के प्रति असावधान रहना ही है। भोजन जीवन का साथी बन गया है, अतएव भोजन ने अपने साथी रोग को भी जीवन का सहचर बना रक्खा है। लोग खाने में गृद्ध हैं और शरीर को चिकित्सकों के भरोसे छोड़ रक्खा है।

* * * *

सन्देह आग के समान है। जब वह हृदय में भड़क उठता है तो मनुष्य की निर्णायक शक्ति उसमें भस्म हो जाती है और मनुष्य किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है। अतएव संशय का अंकुर फूटते ही उसे शीघ्र समाधान द्वारा हटा देना उचित है। समय पर संशय न हटाया गया तो उससे इतनी अधिक कालिमा फैलती है कि अन्तःकरण अन्धकार से पूरित हो जाता है और आत्मा का सहज प्रकाश उसमें कहीं विलीन होजाता है।

* * * *

होनहार के भरोसे पुरुषार्थ त्याग देना उचित नहीं है। पुरुषार्थ के विना कार्य की सिद्धि नहीं होती।

चैत्र शुक्ला १५

वस्तुतः संसार में अपना क्या है? जिसे अपना मान लिया वही अपना है। जिसे अपना न समझा, वह पराया है। जो कल तक पराया था वही आज अपना बन जाता है और जिसे अपना मानकर स्वीकार किया जाता है, वह एक क्षण में पराया बन जाता है। अपने-पराये की यह व्यवस्था केवल मन की सृष्टि है।

* * * *

वादविवाद किसी वस्तु के निर्णय का सही तरीका नहीं है। जिसमें जितनी ज्यादा बुद्धि होगी वह उतना ही अधिक वादविवाद करेगा। वादविवाद करते-करते जीवन ही समाप्त हो सकता है। अतएव इसके फेर में न पड़कर भगवान् के निर्दिष्ट पथ पर चलना ही सर्वसाधारण के लिए उचित है।

* * * *

वस्तुतः हमारा अहित करने वाला हमारे अन्तःकरण में ही विद्यमान है। अगर अहितकर्त्ता अन्तःकरण में न होता तो अन्तःकरण में ही क्लेश का प्रादुर्भाव क्यों होता? जहाँ बीज बोया जाता है वहीं अंकुर उगता है।

वैशाख कृष्णा १

राज्यरक्षा और धर्मरक्षा में सर्वथा विरोध नहीं है। कोई यह न कहे कि हम धर्म की आराधना करने में असमर्थ हैं; क्योंकि हमारे ऊपर राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व है।

* * * *

तप में क्या शक्ति है सो उनसे पूछो जिन्होंने छह-छह महीने तक निराहार रहकर घोर तपश्चरण किया है और जिनका नाम लेने मात्र से हमारा हृदय निष्पाप और निस्ताप बन जाता है।

तप में क्या बल है, यह उस इन्द्र से पूछो जो महाभारत के कथनानुसार अर्जुन की तपस्या को देखकर काँप उठा था।

* * * *

जो स्वेच्छा से, समभाव के साथ कष्ट नहीं भोगते, उन्हें अनिच्छा से, व्याकुलतापूर्वक कष्ट भोगना पड़ता है। स्वेच्छा से कष्ट भोगने में एक प्रकार का उल्लास होता है और अनिच्छा-पूर्वक कष्ट भोगने में एकान्त विषाद होता है। स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने का परिणाम मधुर होता है और अनिच्छा से कष्ट सहने का नतीजा कटुक होता है

वैशाख कृष्णा २

धर्मशास्त्र का कार्य किसी कथा को ऐतिहासिक स्थिति पर पहुँचाना नहीं है। अतएव धर्मकथा को धर्म की दृष्टि से ही देखना चाहिए, इतिहास की दृष्टि से नहीं। धर्मकथा में आदर्श की उच्चता और महत्ता पर बल दिया जाता है और जीवन-शुद्धि उसका लक्ष्य होता है। इतिहास का लक्ष्य इससे भिन्न है। जैसे स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का परिज्ञान करने में दर्शन-शास्त्र निरुपयोगी है और दार्शनिक दक्षता प्राप्त करने के लिए आयुर्वेद अनावश्यक है, इसी प्रकार इतिहास की घटनाएँ जानने के लिए धर्मशास्त्र और जीवनशुद्धि के लिए इतिहास आवश्यक है।

* * * *

मनुष्य इधर-उधर भटकता है—भौतिक पदार्थों को जुटा-कर बलशाली बनना चाहता है, लेकिन वह बल किस काम आएगा? अगर आँख में शक्ति नहीं है तो चश्मा लगाने से क्या होगा?

* *

तप के अभाव में सदाचार भ्रष्ट हो जाता है।

वैशाख कृष्णा ३

हे गरीब, तू चिन्ता क्यों करता है ? जिसके शरीर में अधिक कीचड़ लगा होगा, वह उसे छुड़ाने का अधिक प्रयत्न करेगा। तू भाग्यशाली है कि तेरे पैर में कीचड़ अधिक नहीं लगा है। तू दूसरों से ईर्षा क्यों करता है ? उन्हें तुझसे ईर्षा करना चाहिए। पर देख, सावधान रहना, अपने पैरों में कीचड़ लगाने की भावना भी तेरे दिल में न होनी चाहिए। जिस दिन, जिस क्षण, यह दुर्भावना पैदा होगी उसी दिन और उसी क्षण तेरा सौभाग्य पलट जाएगा। तेरे शरीर पर अगर थोड़ा-सा भी मैल है तो उसे छुटाता चल। उसे थोड़ा समझकर उसका संग्रह न किये रह।

* * * *

प्रभो, मैंने अब तक कुटुम्ब-परिवार आदि को ही अपना माना था, लेकिन आज से—अभेदज्ञान उत्पन्न हो जाने पर—तेरी-मेरी एकता की अनुभूति हो जाने के पश्चात्, मैं तुझे ही अपना मानता हूँ। अपने अन्तःकरण में सांसारिक पदार्थों को स्थान दे रक्खा था। आज उन सब से उसे खाली करता हूँ। अब अपने हृदय के सिंहासन पर तुझको ही विराजमान करूँगा। अब वहाँ अन्य कोई भी वस्तु स्थान न पा सकेगी।

वैशाख कृष्णा ४

तप एक प्रकार की अग्नि है, जिसमें समस्त अपवित्रता, सम्पूर्ण कल्मष एवं समग्र मलीनता भस्म हो जाती है। तपस्या की अग्नि में तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भाँति तेज से विराजित हो जाती है।

* * * *

अरे जीव, तू अपने शरीर का भी नाथ नहीं है! शरीर का नाथ होता तो उस पर तेरा अधिकार होता। तेरी इच्छा के विरुद्ध वह रुग्ण क्यों होता? वेदना का कारण क्यों बनता? जीर्ण क्यों होता? अन्त में तुझे निकाल बाहर क्यों करता?

* * * *

कभी न भूलो कि दान देकर तुम दानीय व्यक्ति का जितना उपकार करते हो, उससे कहीं अधिक दानीय व्यक्ति तुम्हारा (दाता का) उपकार करता है। वह तुम्हें दानधर्म के पालन का सुअवसर देता है, वह तुम्हारे ममत्व को घटाने या हटाने में निमित्त बनता है। अतएव वह तुमसे उपकृत है तो तुम भी उससे कम उपकृत नहीं हो। दान देते समय अहङ्कार आ गया तो तुम्हारा दान अपवित्र हो जाएगा।

वैशाख कृष्णा ५

अमुक युग की अमुक आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए उत्पन्न की गई भावना में ही जीवन की सम्पूर्ण सार्थकता नहीं है। उसके अतिरिक्त बहुत कुछ शाश्वत तत्त्व है, जिसकी सिद्धि में जीवन की सर्वांगीण सफलता निहित है।

युगधर्म ही सब कुछ नहीं है, वरन् शाश्वत धर्म भी है जो जीवन को भूत और भविष्य के साथ सङ्कलित करता है। युगधर्म का महत्त्व काल की मर्यादा में बँधा है पर शाश्वत धर्म सभी प्रकार की सामयिक सीमाओं से मुक्त है।

* * * *

अपने दान के बदले न स्वर्ग-सुख की अभिलाषा करो, न दानीय पुरुष की सेवाओं की आकांक्षा करो, न यश-कीर्ति खरीदो और न उसे अहङ्कार की खुराक बनाओ।

* * * *

बिना प्रेम के, ऊपरी भाव से गाई जाने वाली ईश्वर की स्तुति से कदाचित् सङ्गीत का लाभ हो सकता है, पर आध्यात्मिक लाभ नहीं हो सकता। स्तुति तन्मयता के बिना तोता का पाठ है।

वैशाख कृष्णा ६

तुम्हारे पास धन नहीं है तो चिन्ता करने की क्या बात है ? धन से बढ़कर विद्या, बुद्धि, बल आदि अनेक वस्तुएँ हैं। तुम उनका दान करो। धनदान से विद्यादान और बलदान क्या कम प्रशस्त है ? तुम्हारे पास जो कुछ अपना कहने को है, उस सबका परित्याग कर दो—सब का यज्ञ कर डालो। इससे तुम्हारी आत्मा में अपूर्व ओज प्रकाशित होगा। वह ओज आत्मबल होगा।

* * * *

आत्मबल प्राप्त करने की सीधी-सादी क्रिया यह है कि सच्चे अन्तःकरण से अपना बल छोड़ दो। अर्थात् अपने बल का जो अहंकार तुम्हारे हृदय में आसन जमाये बैठा है उसे निकाल बाहर करो। परमात्मा की शरण में चले जाओ। परमात्मा से जो बल प्राप्त होगा वही आत्मबल होगा। जब तक तुम अपने बल पर—भौतिक बल पर निर्भर रहोगे तब तक आत्मबल प्राप्त न हो सकेगा।

* * * *

निस्पृह होकर अपनी आत्मा की तराजू पर भगवान् की वाणी तोलोगे तो उसकी सत्यता प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी।

वैशाख कृष्णा ७

तुम जो धर्मक्रिया करते हो वह लोक को दिखाने के लिए मत करो। अपनी आत्मा को साक्षी बनाकर करो। निष्काम कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर करो। अपनी अमूल्य धर्म-क्रिया को लौकिक लाभ के लघुतर मूल्य पर न बेच दो। चिन्तामणि रत्न को लोहे के बदले मत दे डालो।

*　　*　　*　　*

मान, प्रतिष्ठा या यश के लिए जो दान दिया जाता है वह त्याग नहीं है। वह तो एक प्रकार का व्यापार है, जिसमें कुछ धन आदि देकर मान-सन्मान आदि खरीदा जाता है। ऐसे दान से दान का असली प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अहं-भाव या ममता का त्याग करना दान का उद्देश्य है।

*　　*　　*　　*

जो वस्तु तुमसे विलग हो जाती या हो सकती है, वह तुम्हारी नहीं है। पर-पदार्थों के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करना महान् भ्रम है। अगर 'मैं' और 'मेरी' की मिथ्या धारणा मिट जाय तो जीवन में एक प्रकार की अलौ-किक लघुता, निरुपम निस्पृहता और दिव्य शान्ति का उदय होगा।

वैशाख कृष्णा ८

तुम किसी भी घटना के लिए दूसरों को उत्तरदायी ठहराओगे तो राग-द्वेष होना अनिवार्य है, अतएव उसके लिए अपने आप उत्तरदायी बनो। इस तरीके से तुम निष्पाप बनोगे, तुम्हारा अन्तःकरण समता की सुधा से आप्लावित रहेगा।

* * * *

तुम समझते हो—'अमुक वस्तु हमारे पास है, अतएव हम उसके स्वामी हैं।' पर ज्ञानी-जन कहते हैं—अमुक वस्तु तुम्हारे पास है इसी कारण तुम उसके गुलाम हो, अतएव अनाथ हो।

* * * *

आत्मबल में अद्भुत शक्ति है। इस बल के सामने संसार का कोई भी बल नहीं टिक सकता। इसके विपरीत, जिसमें आत्मबल का सर्वथा अभाव है वह अन्यान्य बलों का अवलम्बन करके भी कृतकार्य नहीं हो सकता।

* * * *

अगर तुम्हारा आत्मा इन्द्रियों का दास न होगा तो वह स्वयं ही बुरे-भले काम की परीक्षा कर लेगा।

वैशाख कृष्णा ६

मृत्यु के समय अधिकांश लोग दुःख का अनुभव करते हैं। मृत्यु का घोर अन्धकार उन्हें विह्वल बना देता है। बड़े-बड़े शूरवीर योद्धा, जो समुद्र के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करते हैं, विशाल जलराशि को चीर कर अपना मार्ग बनाते हैं और देवताओं की भाँति आकाश में विहार करते हैं, जिनके पराक्रम से संसार थर्राता है, वे भी मृत्यु के सामने कातर बन जाते हैं। लेकिन आत्मबल से सम्पन्न महात्मा मृत्यु का आलिंगन करते समय रंचमात्र भी खेद नहीं करते। मृत्यु उनके लिए सघन अन्धकार नहीं है, वरन् स्वर्ग-अपवर्ग की ओर ले जाने वाले देवदूत के समान है। इसका एकमात्र कारण आत्मबल ही है।

* * * *

मृदुता एक महान् गुण है और वह मान पर विजय प्राप्त करने से आता है। जिसमें नम्रता होती है वही महान् समझा जाता है।

* * * *

हे पुरुष! अभिमान करना बहुत बुरा है। अभिमानी व्यक्ति को अपमान का दुःख भोगना पड़ता है और अभिमान का त्याग करने वाले को सन्मान मिलता है।

वैशाख कृष्णा १०

आत्मबल ही सब बलों में श्रेष्ठ है। यही नहीं वरन् यह कहना भी अनुचित न होगा कि आत्मबल ही एकमात्र सच्चा बल है। जिसने आत्मबल पा लिया उसे दूसरे बल की आवश्यकता ही नहीं रहती।

* * * *

सम्यग्दृष्टि समस्त धर्मक्रियाओं का मूल है। अन्य क्रियाएँ उसकी शाखाएँ हैं। मूल के अभाव में शाखाएँ नहीं हो सकतीं। साथ ही मूल के सूख जाने पर शाखाएँ भी सूख जाती हैं। अतएव मूल का सुरक्षित होना आवश्यक है।

* * * *

जो व्यक्ति अन्धों की तरह वस्तु के एक अँश को स्वीकार करके अन्य अँशों का सर्वथा निषेध करता है और एक ही अँश को पकड़ रखने का आग्रह करता है वह मिथ्यात्व में पड़ जाता है।

* * * *

लोभ का कहीं अन्त नहीं है और जहाँ लोभ होता है वहाँ पाप का पोषण होता है।

वैशाख कृष्णा ११

भले आदमी के लिए उचित है कि वह अपनी ही किसी बात के लिए हठ पकड़कर न बैठ जाय। विवेक के साथ पूर्वापर का विचार करना और दूसरे के दृष्टिकोण को सहृदयता के साथ समझना आवश्यक है।

* * * *

छल-कपट करने वाले को लोग होशियार समझते हैं परन्तु जब उसका ध्यान अपनी ओर जाता है तो उसे पश्चात्ताप हुए बिना नहीं रहता। उस मर्मवेधी पश्चात्ताप से बचने का मार्ग है—पहले से ही सरलता धारण करना।

* * * *

इन्द्रियों का निग्रह किस प्रकार किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पदार्थों के असली-स्वरूप का विचार करके उन्हें निस्सार समझना चाहिए और उन निस्सार पदार्थों से विमुख होकर उनकी ओर इन्द्रियों को नहीं जाने देना चाहिए। साथ ही, जिन कामों से आत्मा का कल्याण होता हो उन्हीं कामों में आत्मा को प्रवृत्त करना चाहिए। इन्द्रियों को वश में करने का यही उपाय है।

वैशाख कृष्णा १२

जो लोग शुद्ध भावना के साथ परमात्मा का शरण ग्रहण करते हैं उनके लिए संसार क्रीड़ाधाम बन जाता है। परमात्मा के शरण में जाने पर दुःखमय संसार भी सुखमय बन जाता है। अगर दुःखमय संसार को सुखमय बनाना चाहते हो तो परमात्मा का तथा परमात्मप्ररूपित धर्म का आश्रय लो।

*   *   *   *

परमात्मा के नामसंकीर्त्तनरूपी रत्न को तुच्छ वस्तु के बदले में दे देना मूर्खता है। जो लोग नामसंकीर्त्तन को अनमोल समझकर संसार के किसी भी पदार्थ के साथ उसकी अदल-बदल नहीं करते, वही उसका महान् फल प्राप्त कर सकते हैं।

*   *   *   *

कोई भी बल चारित्रबल की तुलना नहीं कर सकता जिसमें चारित्र का बल है उसे दूसरे बल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। राम के पास चारित्रबल के सिवाय और क्या था? चारित्रबल की बदौलत सभी बल उन्हें प्राप्त हो गए। इसके विरुद्ध रावण के पास सभी बल थे, मगर चारित्रबल के अभाव में वे सब निरर्थक सिद्ध हुए।

वैशाख कृष्णा १३

जो वीतराग और वीतद्वेष है, वह शोकरहित है। जैसे कमल की पांखुड़ी जल में रहती हुई भी जल से लिप्त नहीं होती, उसी प्रकार वीतराग संसार में रहते हुए भी सांसारिक दुःखप्रवाह से लिप्त नहीं होते।

* * * *

पर्वत से एक ही पैर फिसल जाय तो कौन कह सकता है कि कितना पतन होगा? इसी प्रकार एक भी इन्द्रिय अगर काबू से बाहर हो गई तो कौन कह सकता है कि आत्मा का कितना पतन होगा?

* * * *

जिसने ममता का त्याग कर दिया हो वही व्यक्ति जन-समाज का कल्याण कर सकता है। अर्थलोभी व्यक्ति प्रायः संसार का अहित करने में प्रवृत्त रहता है।

* * * *

सच्चा आनन्द धन में नहीं, धन का त्याग करने में है। धन का त्यागी स्वयं सुखी रहता है और दूसरों को भी सुखी करता है।

वैशाख कृष्णा १४

जैसे अग्नि थोड़े ही समय में रुई के ढेर को भस्म कर देती है उसी प्रकार क्रोध भी आत्मा के समस्त शुभ गुणों को भस्म कर देता है। क्रोध उत्पन्न होने पर मनुष्य आँखें होते हुए भी अन्धा बन जाता है।

* * * *

सवार घोड़े को अपने काबू में नहीं रक्खेगा तो वह नीचे पड़ जायगा। इसी प्रकार इन्द्रियों पर काबू न रखने का परिणाम है—आत्मा का पतन! इन्द्रियों का निग्रह करने से आत्मा का उद्धार होता है और निग्रह न करने से पतन अवश्यंभावी है।

* * * *

जहाँ निर्लोभता है वहाँ निर्भयता है। अतएव निर्भय बनने के लिए जीवन में निर्लोभता को स्थान दो। लोभ को जीतो।

* * * *

जो मनुष्य मैत्रीपूर्ण आचार और विवेकपूर्ण विचार द्वारा कषाय को जीतने का प्रयत्न करता है वह कषाय को जीत सकता है और विश्व में शान्ति भी स्थापित कर सकता है।

वैशाख कृष्णा ३०

धन को परमात्मा के समान मानने वाले अर्थलोलुप लोगों की बदौलत ही यह संसार दुखी बना हुआ है और जिन्होंने धन को धूल के समान मानकर उसका त्याग कर दिया है, उन निर्लोभ पुरुषों की ही बदौलत संसार सुखी हो सका है अथवा हो सकता है।

* * * *

अगर तुम वास्तविकता पर विचार करोगे तो जान पड़ेगा कि लोभ का कहीं अन्त ही नहीं है। ज्यों-ज्यों धन बढ़ता जाता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है और ज्यों-ज्यों लोभ बढ़ता जाता है त्यों-त्यों पाप का पोषण होता जाता है।

* * * *

सत्य पूजा की सामग्री के लिए साधारणतया एक कौड़ी भी नहीं खरचनी पड़ती। किन्तु कभी-कभी इतना अधिक आत्मत्याग करना पड़ता है कि संसार का कोई भी त्याग उसकी बराबरी नहीं कर सकता।

मन, वचन और काय से सत्य का आचरण करना ही सत्य की पूजा है।

वैशाख शुक्ला १

लोग समझते हैं कि सुभीते के साधन बढ़ जाने से हम सुखी हो गए हैं, पर वास्तव में इन साधनों द्वारा सुख नहीं बढ़ा, परतन्त्रता ही बढ़ी है।

*　　*　　*　　*

आत्मा और शरीर तलवार तथा म्यान की तरह जुदा-जुदा हैं। तलवार और म्यान जुदा-जुदा हैं फिर भी तलवार म्यान में रहती है। इसी प्रकार आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं पर आत्मा शरीर में रहता है। आत्मा अमूर्त्त और अविनाशी है। शरीर मूर्त्त और विनश्वर है।

*　　*　　*　　*

तुम्हीं कर्म के कर्त्ता और तुम्हीं कर्म के भोक्ता हो। तुम स्वयं अपना सुधार और बिगाड़ कर सकते हो। स्वभाव, काल आदि की सहायता तुम्हारे कार्य में अपेक्षित अवश्य है, परन्तु कर्म के कर्त्ता तो तुम स्वयं हो।

*　　*　　*　　*

मन जब खराब कामों में प्रवृत्त होने लगे तब उसे वहाँ से रोककर सत्कर्मों में प्रवृत्त करना ही मन के निरोध का प्रारम्भ है।

वैशाख शुक्ला २

अगर तुम परमात्मा को और अपनी आत्मा को सन्तुष्ट करना चाहते हो तो जैसा कहते हो वैसा ही आचरण करके दिखलाना चाहिए। कथनी और करनी में भिन्नता रखने से जीवन-व्यवहार ठीक तरह नहीं चल सकता।

* * * *

जीभ का उपयोग अगर परमात्मा का भजन करने में किया जा सकता है तो फिर दूसरे सांसारिक कार्यों में उसका दुरुपयोग करने की क्या आवश्यकता है?

* * * *

परमात्मा तीन भुवन के नाथ हैं अर्थात् समस्त जीवों के स्वामी हैं। अतएव जगत् के किसी भी प्राणी, भूत, जीव तथा सत्व का अनादर न करना परमात्मा की प्रार्थना है।

* * * *

जिस प्रकार तुम्हें यह पसन्द नहीं है कि कोई तुम्हें मारे, उसी प्रकार दूसरे प्राणियों को भी यह पसन्द नहीं है कि तुम उन्हें मारो। अतएव किसी को न मारना धर्म है।

वैशाख शुक्ला ३

जैसा व्यवहार तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते वैसा व्यवहार तुम दूसरों के साथ भी मत करो। इतना ही नहीं, बल्कि अगर तुम्हारी शक्ति है तो उस शक्ति का उपयोग दूसरों की सहायता के लिए करो।

*   *   *   *

मोतियों की माला पहिनकर लोग फूले नहीं समाते, परंतु उससे जीवन का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। वीर-वाणी रूपी अनमोल मोतियों की माला अपने गले में धारण करने वाले ही अपने जीवन को कल्याणमय बना सकते हैं।

किसी का अभिमान सदा नहीं टिक सकता। जब राजा रावण का भी अभिमान न टिक सका तो फिर साधारण आदमी का अभिमान न टिकने में आश्चर्य ही क्या है!

*   *   *

जीवन को नीतिमय, प्रामाणिक, धार्मिक तथा उन्नत बनाने के लिए सर्वप्रथम सत्यमय बनाना आवश्यक है।

वैशाख शुक्ला ५

जैसे बालक कपटरहित होकर माता-पिता के सामने सब बात खोलकर कह देता है, उसी प्रकार जो पुरुष अपना समस्त व्यवहार निष्कपट होकर करता है, वही वास्तव में धर्म की आराधना कर सकता है।

* *

जब तक आत्मा और परमात्मा के बीच कपट का व्यवधान है तब तक आत्मा, परमात्मा नहीं बन सकता। पारस और लोहे के बीच जरा-सा अन्तर हो तो पारस, लोहे को सोना कैसे बना सकता है?

* *

जैसे-पृथ्वी के सहारे के बिना वृक्ष आदि स्थिर नहीं रह सकते उसी प्रकार समस्त गुणों की आधारभूमिका मृदुता अर्थात् विनयशीलता है। विनयशीलता के अभाव में कोई भी गुण स्थिर नहीं रह सकता।

* *

जो महापुरुष अपनी आत्मा को जीतकर जितात्मा अथवा जितेन्द्रिय बन जाता है, वह जगद्वन्दनीय हो जाता है।

वैशाख शुक्ला ६

किसी विशिष्ट व्यक्ति को घर आने का आमन्त्रण तभी दिया जाता है जब अपना घर पहले से ही साफ कर लिया हो। घर साफ-सुथरा न हो तो महान् पुरुष को घर आने का निमन्त्रण नहीं दिया जाता। इसी प्रकार अगर अपने आत्म-मन्दिर में परमात्मदेव को पधराना हो तो असत्य रूपी कचरे को बाहर निकाल देना चाहिए।

* *

क्षात्रियत्व न रहने के कारण लोग तलवार चलाना तो भूल गये हैं किन्तु उसके बदले वचन-बाण चलाना सीख गये हैं। वचन-बाण तलवार से भी ज्यादा तीखे होते हैं। वे तलवार की अपेक्षा अधिक गहरा घाव करते हैं।

* *

सत्य का उपासक, सत्य के समक्ष तीन लोक की सम्पदा को ही नहीं वरन् अपने प्राणों को भी तुच्छ समझता है। किंतु जो लोग किसी सम्प्रदाय, धर्म या मत के पीछे मतवाले बन जाते हैं और स्वार्थवश होकर सत्यासत्य का विवेक भूल जाते हैं, वे सत्य का स्वरूप नहीं समझ सकते। वे सत्य को अपने जीवन में उतार भी नहीं सकते।

वैशाख शुक्ला ७

मन की समाधि से एकाग्रता उत्पन्न होती है, एकाग्रता से ज्ञानशक्ति उत्पन्न होती है और ज्ञानशक्ति से मिथ्यात्व का नाश तथा सम्यग्दृष्टि प्राप्त होती है।

* * * *

सत्य एक व्यापक और सार्वभौम सिद्धान्त है। संसार में विभिन्न मत हैं और उनके सिद्धान्त अलग-अलग हैं। कुछ मतों के बाह्य सिद्धान्तों में तो इतनी अधिक भिन्नता होती है कि एक मतानुयायी दूसरे मत के अनुयायी से मिल भी नहीं सकता। यही नहीं, वरन् इन सिद्धान्तों को पकड़े रखकर वे प्रायः महायुद्ध मचा देते हैं। ऐसा होने पर भी, अगर सब मतावलम्बी गम्भीरतापूर्वक, निष्पक्ष दृष्टि से विचार करें तो उन्हें मालूम होगा कि धर्म का पाया सत्य पर ही टिका है और वह सत्य सब का एक है। सत्य का स्वरूप समझ लेने पर आपस में कलह करने वाले लोग भी भाई-भाई की तरह एक-दूसरे से गले मिलेंगे और प्रेमपूर्वक भेंटने के लिए तैयार हो जाएँगे।

* * * *

अपने सद्विचार को आचार में लाना ही कल्याणमार्ग पर प्रयाण करना है।

वैशाख शुक्ला ८

तुम्हारे हृदय में अपनी माता का स्थान ऊँचा है या दासी का? अगर माता का स्थान ऊँचा है तो मातृभाषा के लिए भी ऊँचा स्थान होना चाहिए! मातृभाषा माता के स्थान पर है और विदेशी भाषा दासी के स्थान पर। दासी कितनी ही सुरूपवती और सुघड़ क्यों न हो, माता का स्थान कदापि नहीं ले सकती।

* * *

लोग धनिकों को सुखी मानते हैं पर जरा धनिकों से पूछो कि वे सुखी हैं या दुखी? वास्तव में धनिकों को सुखी समझना भ्रम मात्र है। प्रायः देखा जाता है कि जिनके पास धन है वही लोग अधिक हाय-हाय करते हैं। जहाँ जितना ज्यादा ममत्व है वहाँ उतना ही ज्यादा दुःख है।

* * * *

इस बात का विचार करो कि वास्तव में दुःख कौन देता है? चोर-लुटेरा दुःख देता है या धन की ममता? धन की ममता के कारण ही दुःखों का उद्भव होता है। इस ममता का त्याग कर देने पर सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है।

वैशाख शुक्ला ६

सूर्य की तरफ पीठ करके छाया को पकड़ने के लिए दौड़ने से छाया आगे-आगे भागती जाती है, इसी प्रकार ममता के कारण सांसारिक पदार्थ दूर से दूरतर होते जाते हैं। सूर्य की ओर मुख और छाया की ओर पीठ करके चलने से छाया पीछे-पीछे आती है। इसी प्रकार निस्पृहता धारण करने पर सांसारिक पदार्थ पीछे-पीछे दौड़ते हैं।

* * * *

हिंसा के प्रयोग से अथवा हिंसक अस्त्र शस्त्रों से प्राप्त की जाने वाली विजय सदा के लिए स्थायी नहीं होती। प्रेम और अहिंसा द्वारा हृदय में परिवर्त्तन करके जनसमाज के हृदय पर जो प्रभुत्व स्थापित किया जाता है, वही सच्ची और स्थायी विजय है।

* * * *

शरीर नश्वर है। किसी न किसी दिन अवश्य ही जीर्ण-शीर्ण हो जाएगा। ऐसी स्थिति में अगर यह आज ही नष्ट होता है तो दुःख मानने की क्या आवश्यकता है? आत्मा तो अजर-अमर है। उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता।

वैशाख शुक्ला १०

जो वस्तु अन्त में छूटने-ही वाली है उस नश्वर वस्तु के प्रति ममत्व रखने से लाभ है या उसका स्वेच्छा से त्याग करने में लाभ है ?

* * * *

आत्मविजय में समस्त विजयों का समावेश हो जाता है। आत्मविजयी जितात्मा लाखों योद्धाओं को जीतने वाले योद्धा की अपेक्षा भी बड़ा विजयशाली गिना जाता है। जितात्मा की सर्वत्र पूजा होती है। इसी कारण सम्राट् की अपेक्षा परिव्राट् की पदवी ऊँची मानी गई है।

* * * *

जिस काम ने रावण जैसे प्रतापी पृथ्वीपति को भी परास्त कर दिया उस काम को जीत लेना हँसी-खेल नहीं है। वास्तव में जो काम आदि विकारों को जीत लेता है वह महात्मा—महापुरुष है।

* * * *

तीर्थंकर बनना तो सभी को रुचता है मगर तीर्थङ्कर पद प्राप्त करने के लिए सेवा करना रुचता है या नहीं ?

वैशाख शुक्ला ११

सुभट की अपेक्षा साधु और सम्राट् की अपेक्षा परिव्राट् इसीलिए वन्दनीय और पूजनीय है कि सुभट और सम्राट् क्षेत्र पर विजय प्राप्त करता है जब कि साधु या परिव्राट् क्षेत्री अर्थात् आत्मा पर। क्षेत्र या शरीर पर विजय पा लेना कोई बड़ी बात नहीं है परन्तु क्षेत्री अर्थात् आत्मा पर विजय पा लेना अत्यन्त ही कठिन है।

* * * *

तलवार चाहे जितनी तीखी धार वाली क्यों न हो, अगर वह कायर के हाथ पड़ जाती है तो निकम्मी साबित होती है। वह तलवार जब किसी वीर के हाथ में आ जाती है तो अपने जौहर दिखलाती है। इसी प्रकार अहिंसा और क्षमा के शस्त्र कायरों के हाथ पड़कर निष्फल साबित होते हैं और वीर पुरुषों के हाथ लगकर अमोघ शस्त्र सिद्ध होते हैं।

* * * *

बुद्धि शरीर रूपी चोर की कन्या है। शरीर यद्यपि चोर के समान है, फिर भी अनेक रत्न उसके कब्जे में हैं। इस शरीर के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

वैशाख शुक्ला १२

मुमुक्षु आत्मा बाह्य युद्ध की अपेक्षा कर्मशत्रुओं को परास्त करने के लिए आन्तरिक युद्ध करना ही अधिक पसन्द करते हैं। बाह्य युद्धों की विजय क्षणिक होती है और परिणाम में परिताप उपजाती है। इस विजय से बाह्य युद्धों की परम्परा का जन्म होता है और कभी युद्ध से विराम नहीं मिलता। अतएव बाह्य शत्रुओं को उत्पन्न करने वाले भीतरी—हृदय में घुसे हुए शत्रुओं का नाश करने के लिए प्रयास करना ही मुमुक्षु का कर्त्तव्य है।

* * *

आज अगर थोड़ा-बहुत शान्ति का अनुभव होता है तो उसका अधिकांश श्रेय अहिंसादेवी और क्षमा माता के ही हिस्से में जाता है। जगत् में इनका अस्तित्व न रहे तो संसार की शान्ति जितनी है वह भी—अदृश्य हो जाए।

* * * *

किसी मनुष्य में भले ही अधिक बुद्धि न हो, फिर भी उसकी थोड़ी-सी बुद्धि भी अगर निष्पक्ष अर्थात् सम हो तो उस मनुष्य के लिए सभी वस्तुएँ सम बन जाती हैं।

वैशाख शुक्ला १३

सेवा को हल्का काम समझने वाला स्वयं ही हल्का बना रहता है। वह उच्च अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता। सेवा करने वाले को मानना चाहिये कि मैं जो सेवा कर रहा हूँ वह परमात्मा की ही सेवा कर रहा हूँ।

* * * *

जैनशास्त्रों में तीर्थङ्कर-पद से बड़ा अन्य कोई पद नहीं माना गया है। यह महान् पद सेवा करने से प्राप्त होता है। जिस सेवा से ऐसा महान् फल प्राप्त होता है उसमें झूठ-कपट का व्यवहार करना कितनी मूर्खता है!

* * * *

वैयावृत्य (सेवा) करने वाले व्यक्ति के आगे देव भी नतमस्तक हो जाते हैं तो साधारण लोग अगर सेवाभावी को नमस्कार करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

* * * *

सेवा आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाली साँकल है।

वैशाख शुक्ला १४

संसार सेवा के कारण ही टिक रहा है। जब संसार में सेवाभावना की कमी हो जाती है तभी उत्पात मचने लगता है और जब सेवाभाव की वृद्धि होती है तब यह संसार स्वर्ग के समान बन जाता है।

* * * *

कितनेक लोगों को धार्मिक क्रिया करने का तो खूब चाव होता है परन्तु सेवा-कार्य करने में अरुचि होती है। अगर किसी रोगी की सेवा करने का अवसर आ जाता है तो उन्हें बड़ी कठिनाई होती है। रोगी कपड़े में ही कै-दस्त कर देता है और कभी-कभी रास्ते में ही चक्कर खाकर गिर पड़ता है। ऐसे रोगी की सेवा करना कितना कठिन है! फिर भी जो सेवाभावी लोग रोगी की सेवा को परमात्मा की सेवा मानकर करते हैं, उनकी भावना कितनी ऊँची होगी?

* * * *

परधन को धूल के समान और परस्त्री को माता के समान मानने की नीति अगर अपने जीवन में अमल में लाओगे तो जनसमाज की और अपनी खुद की भी सेवा कर सकोगे।

वैशाख शुक्ला १५

तुम्हारे मन के कुसङ्कल्प ही तुम्हारे दुःखों के बीज हैं। कुसंकल्पों को हटाकर मन को परमात्मा के ध्यान में पिरो दो तो दुःख के संस्कार समूल नष्ट हो जाएंगे।

* * * *

समभाव रखने से विष भी अमृत और आग भी शीतल हो जाती है। सीता में समभाव होने के कारण ही अग्नि उसके लिए शीतल बन गई थी। मीरां के समभाव ने विष को भी अमृत के रूप में परिणत कर लिया था।

* * * *

जब तक राग और द्वेष के बीज मौजूद हैं तब तक कर्म के अंकुर फूटते ही रहते हैं और जब तक कर्म के अंकुर फूटते रहते हैं, तब तक जन्म-मरण का वृक्ष फलता-फूलता रहता है। संसार के बन्धनों से मुक्त होने के लिए सर्वप्रथम राग-द्वेष के बन्धनों से मुक्त होना चाहिए।

* * * *

अगर छोटे से छोटा भी अत्याचार सहन कर लिया जाय तो गणतन्त्र का आसन दूसरे ही क्षण काँपने लगेगा।

ज्येष्ठ कृष्णा १

क्षमा (पृथ्वी) प्रत्येक वस्तु को आधार देती है, इसी प्रकार क्षमा भी प्रत्येक छोटे-बड़े गुण को आधार देती है। क्षमा के बिना वास्तव में कोई भी गुण नहीं टिक सकता। मोक्ष के मार्ग पर चलने में क्षमा पाथेय के समान तो है ही, संसार-व्यवहार में भी क्षमा की अत्यन्त आवश्यकता है।

* * * *

कितनेक लोग क्षमा को निर्बलों का शस्त्र मानते हैं तो कुछ लोग उसे कायरता का चिह्न समझते हैं। परन्तु वास्तव में क्षमा निर्बलों का नहीं वरन् सबलों का अमोघ शस्त्र है और वीर पुरुषों का आभूषण है। कायर पुरुषों ने अपनी कायरता के कारण क्षमा को लजाया है परन्तु सच्चे वीर पुरुषों ने क्षमा को अपनी मुकुट-मणि बनाकर सुशोभित किया है।

* * * *

कुलधर्म की तराजू पर जिस दिन उच्चता-नीचता तोली जाएगी उसी दिन लोगों की भ्रमणा भाग जाएगी। उस समय साफ मालूम होगा कि संकीर्ण जातिवाद समाज की बुराई है और गुणवाद समाज का आदर्श है।

ज्येष्ठ कृष्णा २

लौकिक विजय से विजेता को जैसी प्रसन्नता होती है और जिस प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है, वैसी ही प्रसन्नता और वैसा ही आनन्दानुभव क्षमा द्वारा परीषहों को जीत लेने पर होता है। लौकिक विजय की अपेक्षा यह विजय महान् है। अतएव लौकिक विजय के आनन्द की अपेक्षा लोकोत्तर विजय का आनन्द अधिक होता है।

* * * *

कुलधर्मी भूखा मर जाएगा, पर पेट की आग बुझाने के लिए वह चोरी या असत्य का आचरण नहीं करेगा। ऐसा करना वह वज्रपात के समान दुःख मानेगा।

* * * *

वास्तव में कोई मनुष्य उच्च कुल में जन्म लेने मात्र से उच्च नहीं हो जाता। इसी प्रकार नीच कुल में जन्म लेने मात्र से कोई नीच नहीं होता। उच्चता और नीचता मनुष्य की अच्छी और बुरी प्रवृत्तियों पर अवलम्बित है। मनुष्य सत्प्रवृत्ति करके अपना चरित्र ऊँचा बनाएगा तो वह ऊँचा बन सकेगा। जो असत्प्रवृत्ति करेगा वह नीचा कहलाएगा।

ज्येष्ठ कृष्णा ३

अगर हममें अन्यायमात्र का सामना करने का नैतिक बल मौजूद हो तथा निस्सार मतभेदों एवं स्वार्थों को तिलांजलि देकर राष्ट्र, समाज और धर्म की रक्षा करने की क्षमता आजाए तो किसका सामर्थ्य है जो हमें अपने पूर्वजों की सम्पत्ति के अधिकार या उपभोग से वंचित कर सके ?

* * * *

जो मनुष्य शरण में आये हुए का त्याग कर देता है अर्थात् उसे आश्रय नहीं देता, वह कायर है। जो सच्चा वीर है, जो महावीर भगवान् का सच्चा अनुयायी है, जो उदार और धर्मात्मा है, वह अपना सर्वस्व निछावर करके भी शरणागत की रक्षा और सेवा करता है।

* * * *

सङ्कट के समय व्रत का स्मरण कराने वाली, व्रतपालन के लिए बारम्बार प्रेरित करने वाली और प्रबल प्रलोभनों के समय संयम का मार्ग समझाने वाली प्रतिज्ञा ही है। प्रतिज्ञा हमारा सच्चा मित्र है। ऐसे सच्चे मित्र की अवहेलना कैसे की जा सकती है ?

ज्येष्ठ कृष्णा ४

जो प्रजा अन्याय और अत्याचार का अपने पूरे बल के साथ सामना नहीं कर सकती अथवा जो अपने तुच्छ स्वार्थों में ही संलग्न रहती है, वह प्रजा गणतन्त्र के लिए अपनी योग्यता साबित नहीं कर सकती।

* * * *

मैं जोर देकर बार-बार कहता हूँ कि प्रत्येक बात पर बुद्धि-पूर्वक विचार करो। दूसरे जो कुछ कहते हैं उसे ध्यानपूर्वक सुनो और तात्विक दृष्टि से शास्त्रों का अवलोकन करो। केवल अन्धविश्वास से प्रेरित होकर या संकुचित मनोवृत्ति से अपनी मनःकल्पित बात को मत पकड़ रक्खो। दुराग्रह या ममताग्रह के फेर में मत पड़ो।

* * * *

कुछ लोग कहते हैं—व्रत सम्बन्धी प्रतिज्ञा लेने की आवश्यकता ही क्या है? उन्हें समझना चाहिए—व्रतपालन की प्रतिज्ञा सङ्कट के समय सबल मित्र का काम देती है। प्रतिज्ञा अधःपतन से बचाता है और धर्म का सच्चा मार्ग बतलाती है!

ज्येष्ठ कृष्णा ५

अन्याय और अत्याचार का विरोध करने के लिए कदम न बढ़ाया जाएगा तो संसार में अन्याय का साम्राज्य फैल जाएगा और धर्म का पालन करना असम्भव हो जाएगा।

*   *   *   *

आज धर्म-अधर्म का विवेक नष्टप्राय हो रहा है। इसी कारण जनसमाज में ऐसी मिथ्या धारणा घुस गई है कि जितनी देर सामायिक में (या सन्ध्या-पूजन में) बैठा जाय, बस उतना ही समय धर्म में व्यतीत करना आवश्यक है। दूकान पर पैर रक्खा और धर्म समाप्त हुआ। दूकान पर तो पाप ही पाप करना होता है। वास्तव में यह धारणा भ्रमपूर्ण है। ···रात-दिन की शुभ-अशुभ प्रवृत्तियों से ही पुण्य-पाप का हिसाब होता है।

*   *   *   *

प्रत्येक ग्राम में सन्मार्गदर्शक अथवा मुखिया की आवश्यकता होती है। मुखिया पुरुष ही ग्रामनिवासियों का धर्म-अधर्म का; सत्य-असत्य का, सुख-दुःख का सच्चा ज्ञान कराता है और सद्धर्म का उपदेश देकर सन्मार्ग पर चलाता है।

ज्येष्ठ कृष्णा ६

विपदाओं के पहाड़ टूट पड़ें, खाने-पीने के फाके पड़ते हों, तब भी जो धीर-वीर पुरुष अपनी उदार प्रकृति को स्थिर रखता है, अपने सदाचार से तिलभर भी नहीं डिगता, वह सच्चा सुव्रती कहलाता है। जहाँ सुव्रतियों की संख्या जितनी अधिक होती है वह ग्राम, नगर और वह देश उतना ही सुरक्षित रहता है। सुव्रतियों के सदाचार रूप प्रबल बल के मुकाबिले शत्रुओं का दल-बल निर्बल-निस्तेज हो जाता है।

* * * *

न्यायवृत्ति रखना और प्रामाणिक रहना, यह सुव्रतियों का मुद्रालेख है। यह मुद्रालेख उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। सुव्रती अन्याय के खिलाफ अलख जगाता है। वह न स्वयं अन्याय करता है और न सामने होने वाले अन्याय को टुकुर-टुकुर देखता रहता है। वह अन्याय का प्रतीकार करने के लिए कटिबद्ध रहता है। अन्याय का प्रतीकार करने में वह अपने प्राणों को हँसते-हँसते निछावर कर देता है। वह समाज और देश के चरणों में अपने जीवन का बलिदान देकर भी न्याय की रक्षा करता है।

ज्येष्ठ कृष्णा ७

अगर तुम अपना जीवन सफल बनाना चाहो तो व्रत-पालन में दृढ़ रहना । जिस व्रत को अंगीकार कर लो उससे चिपटे रहो । उसे पूर्ण रूप से निभाने के लिए सतत उद्योग करो ।

* * * *

धर्मशास्त्र एक प्रकार का आध्यात्मिक 'पिनल कोड' है । धर्मसूत्रों के धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक कायदे-कानून इतने सुन्दर और न्यायसङ्गत हैं कि अगर हम निर्दोष भाव से उनका अनुकरण करें तो देश, समाज या कुटुम्ब में घुसे हुए अनेक प्रकार के पारस्परिक वैरभाव स्वतः शान्त हो सकते हैं ।

* * * *

जिस कार्य से राष्ट्र सुव्यवस्थित होता है, राष्ट्र की उन्नति होती है, मानव-समाज अपने धर्म का ठीक-ठीक पालन करना सीखता है, राष्ट्र की सम्पत्ति का संरक्षण होता है, सुखशान्ति का प्रसार होता है, प्रजा सुखी बनती है, राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ती है और कोई अत्याचारी परराष्ट्र, स्वराष्ट्र के किसी भाग पर अत्याचार नहीं कर सकता, वह कार्य राष्ट्रधर्म कहलाता है ।

ज्येष्ठ कृष्णा ८

याद रखना चाहिए, जो नागरिक नगरधर्म का पालन नहीं करता वह अपने राष्ट्र का अपमान करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो वह देशद्रोह करता है।

* * * *

आत्मधर्म की बातें करने वाले लोग संसार से सम्बन्ध रखने वाले बहुत-से काम करते हैं, परन्तु जब आचारधर्म के पालन का प्रश्न उपस्थित होता है तब वे कहने लगते हैं—'हमें दुनियादारी की बातों से क्या सरोकार!' ऐसे लोग आत्म-धर्म की ओट में राष्ट्र के उपकार से विमुख रहते हैं।

* * * *

जब लौकिक और लोकोत्तर धर्मों का ठीक तरह समन्वय करके पालन किया जाता है, तब मानव-जीवन का असली उद्देश्य—मोक्ष—सिद्ध होता है।

* * * *

लौकिक धर्म से शरीर की और विचार की शुद्धि होती है और लोकोत्तर धर्म से अन्तःकरण एवं आत्मा की।

ज्येष्ठ कृष्णा ६

मस्तिष्क अस्थिर या विकृत हो जाने पर जैसे शरीर को अवश्य हानि पहुँचती है, उसी प्रकार नागरिकों द्वारा अपना नगरधर्म भुला देने के कारण ग्राम्यजन अपना ग्रामधर्म भूल जाते हैं।

*   *   *   *

अहिंसावादी कायर नहीं, वीर होता है। सच्चा अहिंसावादी एक ही पुरुष, अहिंसा की असीम शक्ति द्वारा, रक्त का एक भी बूंद गिराये विना, बड़ी से बड़ी पाशविक शक्तियों को परास्त करने की क्षमता रखता है। अहिंसा में ऐसा असीम और अमोघ बल है।

*   *   *   *

व्यक्ति, समष्टि का अङ्ग है। समष्टि अगर एक मशीन है तो व्यक्ति उसका एक पुर्जा है। समष्टि के हित में ही व्यक्ति का हित निहित है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह समष्टि के हित को सामने रखकर सत्प्रवृत्ति करे। इस प्रकार की सत्प्रवृत्ति में ही मानवजाति का मङ्गल है।

ज्येष्ठ कृष्णा १०

जो मनुष्य अपने और अपने माने हुए कुटुम्ब के हित-साधन में ही तत्पर रहता है और प्राणीमात्र के हित का विचार तक नहीं करता वह नीतिज्ञ नहीं, नीतिज्ञ है।

*   *   *   *

मानव-जीवन यदि मकान के समान है तो धर्म उसकी नींव है। बिना नींव के मानव-जीवन टिक नहीं सकता। अर्थात् धर्म के अभाव में जीवन मानव-जीवन न रहकर पाशविक जीवन बन जाता है। जीवन को उत्तम मानवीय जीवन बनाने के लिए धर्म-रूपी नींव गहरी और पुख्ता बनाने की आवश्यकता है। धर्म-रूपी नींव अगर कच्ची रहेगी तो मानव-जीवन रूपी मकान शङ्का, कुतर्क, अज्ञान, अनाचार और अधर्म आदि के तूफानों से हिल जाएगा और उसका पतन हुए बिना न रहेगा।

*   *   *   *

व्यक्तियों के बिखरे हुए बल को अगर एकत्र करके संघ-बल के रूप में परिणत कर दिया जाय तो असम्भव प्रतीत होने वाला कार्य भी सरलता के साथ सम्पन्न किया जा सकता है, इस बात को कौन गलत साबित कर सकता है?

ज्येष्ठ कृष्णा ११

क्या सजीव और क्या निर्जीव, प्रत्येक वस्तु में, अणु-अणु में अनन्त सामर्थ्य भरा पड़ा है। वह सामर्थ्य सफल तब होता है जब उसका समन्वय किया जाय। अगर शक्तियों का संग्रह न किया जाय और पारस्परिक संघर्ष के द्वारा उन्हें क्षीण किया जाय तो उनका सदुपयोग होने के बदले दुरुपयोग ही कहला-एगा। शक्तियों का संग्रह करने के लिए संघर्ष को विवेकपूर्वक दूर करने का आवश्यकता है और साथ ही संघशक्ति को केन्द्रित करने की भी आवश्यकता है।

* * * *

जैसे पानी और अग्नि की परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली शक्तियों के समन्वय से अद्भुत शक्तिसम्पन्न विद्युत् उत्पन्न किया जाता है, इसी प्रकार सङ्घ के अङ्गों का समन्वय करके अपूर्व शक्ति उत्पन्न करने से ही संघ में क्षमता आती है।

* * * *

जब तक बिखरी हुई अन्य शक्तियों को एकत्र न किया जाय तब तक एक व्यक्ति की शक्ति से, चाहे वह कितनी ही बलवती क्यों न हो, इष्टसिद्धि नहीं हो सकती।

ज्येष्ठ कृष्णा १२

काम चाहे छोटा हो, चाहे बड़ा हो, उसकी सिद्धि के लिए संघशक्ति की परम आवश्यकता है ।

* * * *

संघशक्ति क्या नहीं कर सकती ? जब निर्जीव वस्तुओं का सङ्गठन अद्भुत काम कर दिखाता है तो विवेकबुद्धि धारण करने वाले मानव-समाज की संघशक्ति का पूछना ही क्या है ?

* * * *

संघधर्म का ध्येय व्यक्ति के श्रेय के साथ समष्टि के श्रेय का साधन करना है । जब समष्टि के श्रेय के लिए व्यक्ति का श्रेय खतरे में पड़ जाता है तब समष्टि के श्रेय का साधन करना संघधर्म का ध्येय बन जाता है ।

* * * *

अगर समूचे गाँव की सम्पत्ति लुट जाए तो एक मनुष्य अपनी सम्पत्ति किस प्रकार सुरक्षित रख सकता है ? इसी प्रकार जो मनुष्य अपने व्यक्तिगत धर्म की सुरक्षा चाहते हैं, उन्हें संघ-धर्म की रक्षा की तरफ भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए ।

ज्येष्ठ कृष्णा १३

राष्ट्र का संघधर्म व्यक्तिगत या वर्गगत हित की अपेक्षा समष्टि के हित का सर्वप्रथम विचार करता है।

* * * *

बुद्धिमान् पुरुष अपने निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए जगत् का अहित नहीं चाहता।

* * * *

कई लोग कहा करते हैं—हमें दूसरों की चिन्ता करने से क्या मतलब ? हम चैन से रहें तो बस है। दूसरों का जो होनहार है सो होगा ही। ऐसे विचार वाले लोग भयङ्कर भूल करते हैं। जिस ग्राम में या जिस देश में ऐसे विचार वाले लोग रहते हैं उस ग्राम या देश का अधःपतन हुए विना नहीं रह सकता।

* * * *

जो पुरुष भीतर ही भीतर संशय में डूबा रहता है और निर्णय नहीं करता, वह 'संशयात्मा विनश्यति' का उदाहरण बन जाता है।

ज्येष्ठ कृष्णा १४

धर्म में दृढ़ विश्वास को स्थान न दिया जाय तो धर्म का आचरण होना कठिन हो जाएगा। दृढ विश्वास, धर्मरूपी महल की नींव है। मगर धर्म में जो दृढ़ विश्वास हो वह अन्धविश्वास में से पैदा नहीं होना चाहिए। जो विश्वास श्रद्धा और तर्क की कसौटी पर चढ़ा हुआ होता है, वही सुदृढ़ होता है। अतएव दृढ़विश्वास श्रद्धाशुद्ध और तर्कशुद्ध होना चाहिए।

* * * *

जो मनुष्य केवल वितंडावाद बढ़ाने के लिए या अपनी तर्कशक्ति का प्रदर्शन करने के लिए शङ्का की लहरों पर नाचता रहता है, वह धर्म का तनिक भी मर्म नहीं समझ सकता।

* * * *

आपत्ती के डर से किसी काम में हाथ न डालना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। कार्य करते समय हानि-लाभ का विचार अवश्य कर लेना चाहिए, पर प्रारम्भ से ही जिस किसी कार्य को शङ्का की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। मनुष्य निर्णयात्मक बुद्धि से जितना अधिक विचार करता है उसे उतना ही अधिक गम्भीर रहस्य का पता चलता है।

ज्येष्ठ कृष्णा ३०

ज्ञान और क्रिया का साहचर्य श्रेयसिद्धि का मुख्य कारण है। जैसा समझो वैसा ही करो, तभी ध्येय सिद्ध होता है। जानना जुदा और करना जुदा, इस प्रकार जहाँ विसंवाद होता है वहाँ बड़े से बड़ा प्रयास करने पर भी विफलता ही मिलती है।

* * * *

सम्यग्ज्ञान शाश्वत सूर्य है, कभी न बुझने वाला दीपक है। उसके चमकते हुए प्रकाश से मात्सर्य, ईर्षा, क्रूरता, लुब्धता आदि अनेक रूपों में फैला हुआ अज्ञान-अन्धकार एक क्षण भी नहीं टिक सकता है।

* * * *

क्रियाकांड—अनुष्ठान औषध है और सम्यग्ज्ञान पथ्य है। सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से अनुष्ठान अमृत-रूप बनकर आत्मा का उन्माद दूर करता है और आत्मा को जागृत करता है।

* * * *

अहिंसावादी अणुमात्र असत्य भाषण को भी आत्मघात करने के समान समझता है।

ज्येष्ठ शुक्ला १

जैसे गाय घास को भी दूध के रूप में परिणत कर लेती है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी पुरुष अन्य धर्मशास्त्रों को भी हित-कर रूप में परिणत कर सकता है और ऐसा करके वह धार्मिक कलह को भी शान्त कर सकता है।

* * * *

जब तक यथार्थ वस्तुस्वरूप न जान लिया जाय तब तक आचरण अर्थहीन होता है। अनजाने को जानना, जाने हुए की खोज करना और खोजे हुए को जीवन में उतारना, यह जीवन-शुद्धि का मार्ग है।

* * * *

गरीबों के जीवन-मरण का विचार न करके, चाहे जिस उपाय से उनका धन हड़पकर तिजोरियाँ भर लेना ही उन्नति का आदर्श हो तो जो मनुष्य दगाबाज़ी करके, सट्टा करके धनो-पार्जन कर रहे हैं वे भी उन्नति कर रहे हैं, यह मानना पड़ेगा। इस प्रकार छल-कपट करके धन लूट लेने को उन्नति मान लिया जाय तो कहना होगा—अभी हम उन्नति का अर्थ ही नहीं समझ पाये हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला २

जब तक मनुष्य सम्यक् प्रकार से अहिंसा का पालन करना न सीखे तब तक कभी उन्नति होने की नहीं, यह बात सुनिश्चित है।

* * * *

प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा के समान समझकर आत्मौपम्य की भावना की उन्नति में ही मानव-समाज की सच्ची उन्नति है।

* * * *

कांक्षा या कामना एक ऐसा विकार है, जिसके संसर्ग से तपस्वियों की घोर तपस्या और धर्मात्माओं के कठोर से कठोर धर्मानुष्ठान भी कलङ्कित हो जाते हैं।

* * * *

आज विश्व में विषमता के कारण जीवन मृतप्राय हो रहा है। जहाँ देखो वहीं भेदभाव तथा विषमता—उच्च-नीच की भावना फैली हुई है। इसी कारण दुःख और दरिद्रता की वृद्धि हो रही है। जगत् को इस दुखी अवस्था में से उबारने का एक ही मार्ग है और वह है समानता का आदर्श।

ज्येष्ठ शुक्ला ३

एक अहिंसावादी मर भले ही जाय पर अन्यायपूर्वक किसी का प्राण या धन हरण नहीं करता।

* * * *

मनुष्य को निष्काम होकर कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। जो कामना से अलग रहता है वह सब का प्रिय बन जाता है। कामनाहीन वृत्ति वाले के लिए सिद्धि दूर नहीं रहती। मगर फल की आकांक्षा करने पर मनुष्य न इधर का रहता है, न उधर का रहता है।

* * * *

धर्माचरण का फल आत्मशुद्धि है। उसे भूलकर धन-धान्य आदि भोगोपभोग की सामग्री की प्राप्ति में धर्म की सफलता मानता है और किये हुए धर्माचरण का फल पाने के लिए अधीर हो जाता है, वह मूढ़ नहीं तो क्या है ?

* * * *

जसे अनुष्ठानहीन कोरे ज्ञान से आत्मशुद्धि नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानहीन चारित्र भी मोक्षसाधक नहीं हो सकता।

ज्येष्ठ शुक्ला ४

सम्यग्दर्शन वह ज्योति है, जिसे उपलब्ध कर मनुष्य विवेकमयी दृष्टि से सम्पन्न बन जाता है। जहाँ सम्यग्दर्शन होगा वहाँ मूढ़दृष्टि को अवकाश नहीं रहता।

* * * *

मानव-जीवन की चरमसाधना क्या है? किस लक्ष्य पर पहुँच जाने पर यह चिरयात्रा समाप्त होगी? मनुष्य की अंतिम स्थिति क्या है? यह ऐसे गूढ़ प्रश्न हैं, जिन पर विचार किये विना विद्वान् का मास्तिष्क मानता नहीं है और विचार करने पर भी उपलब्ध कुछ होता नहीं है। ऐसे प्रश्नों का समाधान दर्शन-शास्त्रों के पृष्ठों पर लिखे अक्षरों से नहीं हो सकता। मस्तिष्क वहाँ काम नहीं कर सकता। जिसे समाधान प्राप्त करना है वह चारित्र की सुरम्य वाटिका में विहार करे।

* * * *

जैसे जेल से डरने वाला स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता और जैसे आँच और धुँए से डरने वाली महिला रसोई नहीं बना सकती, उसी प्रकार कष्टों से घबराने वाला देवलोक के सुख नहीं पा सकता।

ज्येष्ठ शुक्ला ५

भोगोपभोग से प्राप्त होने वाला सुख, दुःख का कारण है। उस सुख को भोगने से दुःख की दीर्घ परम्परा पैदा होती है। इसके अतिरिक्त वह सुख पराधीन है—भोग्य पदार्थों के, इन्द्रियों के और शारीरिक शक्ति के अधीन है। जहाँ पराधीनता है वहाँ दुःख है। उस सुख में निराकुलता नहीं है, व्याकुलता है, अतृप्ति है, भय है, उसका शीघ्र अन्त हो जाता है। उसकी मात्रा अत्यल्प होती है। इन सब कारणों से सांसारिक सुख वास्तव में दुःखरूप है, दुःखमूल है और दुःखामिश्रित है। उसे सुख नहीं कहा जा सकता।

* * * *

यह ठीक है कि अज्ञानपूर्वक सहन किया गया कष्ट मुक्ति का कारण नहीं है, मगर वह भी सर्वथा निष्फल नहीं जाता। उस कष्ट का फल देवलोक है।

* * * *

हम अपने ही किये कर्म का फल भोगते हैं, यह जान लेने पर शान्ति ही रहती है, अशान्ति नहीं होती। अपनी आँख में अपनी ही उँगली लग जाय तो उलहना किसे दिया जाय?

ज्येष्ठ शुक्ला ६

अगर वस्त्रों में सुख होता तो सर्दी में प्रिय और सुखद प्रतीत होने वाले वस्त्र गर्मी में भी प्रिय और सुखद प्रतीत होते। सर्दी में जो वस्तु सुखदायी है वह गर्मी में सुखदायी क्यों न होगी?

भूख में लड्डू सुख देने वाले मालूम पड़ते हैं, लेकिन भूख मिट जाने पर वही लड्डू आपको जबर्दस्ती मार-मार कर खिलाए जाएँ तो कैसे लगेंगे? ज़हर सरीखे!

* * * *

अगर कोई धर्मनिष्ठ पुरुष दुखी है तो समझना चाहिए कि वह पहले किये हुए किसी अशुभ कर्म का फल भोग रहा है। उसके वर्त्तमानकालीन धर्मकार्यों का फल अभी नहीं हो रहा है। पहले के कर्म उदय-अवस्था में हैं और वर्त्तमान-कालीन कर्म अनुदय-अवस्था में हैं। जब वह उदय-अवस्था में आएँगे तो उनका अच्छा फल उसे अवश्य प्राप्त होगा।

* * * *

तू अपनी तरफ से जो करता है, वह किये जा। दूसरों का विचार मत कर!

ज्येष्ठ शुक्ला ७

कभी मत समझो कि करने वाला दूसरा है और आपत्ति हमारे सिर आ पड़ी है। बिना किया कोई भी कर्म भोगा नहीं जाता। सम्भव है अभी तुमने कोई कार्य नहीं किया है और फल भोगना पड़ रहा है, मगर यह फल तुम्हारे ही किसी समय किये कर्म का फल है। प्रत्येक कर्म का फल तत्काल नहीं मिल जाता। इसलिए हमारे किस कर्त्तव्य का फल किस समय मिलता है, यह चाहे समझ में न आवे, तथापि यह सुनिश्चित है कि तुम आज जो फल भोग रहे हो वह तुम्हारे ही किसी कर्म का है।

* * * *

जिस देश में पैदा हुए हैं उसकी निन्दा करके दूसरे देश की प्रशंसा करने वाले गिरे हुए हैं, भोग के कीड़े हैं, उनसे किसी प्रकार का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता।

* * * *

आत्मा की शक्तियाँ बन्धन में हैं। उन पर आवरण पड़ा है। आवरण को हटा देना ही मोक्ष है। मगर इसके लिए निश्चल श्रद्धा और प्रबलतर पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

ज्येष्ठ शुक्ला ८

आज बालकों के दिमाग में उनकी शक्ति से अधिक 'शिक्षा' भरी जाती है। संरक्षक चाहते हैं कि उनका बेटा शीघ्र से शीघ्र बृहस्पति बन जाए। मगर इस हवस का जो परिणाम हो रहा है, वह स्पष्ट है। बालक के मस्तिष्क पर अधिक बोझ लादने से उसकी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और वह अल्पायुष्क हो जाता है।

* * * *

कृत्रिमता एक प्रकार का विकार है। अतएव मनुष्य कृत्रिमता के साथ जितना अधिक सम्पर्क स्थापित करेगा, उतने ही अधिक विकार उसमें उत्पन्न होते जाएँगे। इसके विपरीत मनुष्य-जीवन में जितनी अकृत्रिमता होगी, उतना ही अधिक वह आनन्दमय होगा।

* * * *

लोग भ्रमवश मान लेते हैं कि हमें जङ्गल भला नहीं लगता और महल सुहावना लगता है। अगर यह सच हो तो महल में रहने वाला क्यों जङ्गल की शरण लेता है? शहर में जब प्लेग का प्रकोप होता है तो लोग किस तरफ दौड़ते हैं?

ज्येष्ठ शुक्ला ६

जो अपने मुँह में मिश्री डालेगा उसे मिठास आप ही आएगी। यह मिठास ईश्वर ने दी या मिश्री में ही मिठास का गुण है? मिर्च खाने वाले का मुँह जलेगा। सो ईश्वर उसका मुँह जलाने आयगा या मिर्च में ही मुँह जलाने का गुण है? मिश्री अगर मिठास नहीं देती और मिर्च मुँह नहीं जलाती तो वह मिश्री या मिर्च ही नहीं है। इसी प्रकार कर्म में अगर शुभाशुभ फल देने की शक्ति न हो तो वह कर्म ही नहीं है। जिस प्रकार मुँह को मीठा करने और जलाने का गुण मिश्री और मिर्च में है, उसी प्रकार शुभ और अशुभ फल देने की शक्ति कर्म में है।

* * * *

जैसे बिखरी हुई सूर्य की किरणों से अग्नि उत्पन्न नहीं होती, परन्तु काच को बीच में रखने से किरणें एकत्र हो जाती हैं और उस काच के नीचे रुई रखने से आग उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार मन और इन्द्रियों को एकत्र करने से आत्म-ज्योति प्रकट होती है। ध्यान रूपी काच के द्वारा बिखरी हुई इन्द्रियरूपी किरणें एकत्र हो जाती हैं और आत्मज्योति प्रकट होकर अपार और अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है।

ज्येष्ठ शुक्ला १०

तुम्हारी 'माँ' ने जो कपड़ा कष्ट उठाकर बुना है, उसे मोटा कहकर न पहनना और गुलाम बनकर जरी का जामा पहनना कोई अच्छी बात नहीं है। इससे तुम्हारी कद्र न होगी। गुलाम बनाकर वस्त्र देने वाले जब अपना हाथ खींच लेंगे तब तुम पर कैसी बीतेगी ? विदेशी कपड़ा मुफ्त तो मिलता नहीं, फिर गुलाम बनने से क्या लाभ है ?

* * * *

स्वर्ग की भूमि चाहे जैसी हो, तेरे किस काम की ? वहाँ के कल्पवृक्ष तेरे किस काम के ? स्वर्ग की भूमि को बड़ा मानना, जिस भूमि ने तेरा भार वहन किया है और कर रही है, उसका अपमान करना है। उसका अपमान करना घोर कृतघ्नता है। अपनी मातृभूमि का अपमान करने वाले के समान कोई नीच नहीं है।

* * * *

श्रोता को वक्ता के दोष न देखकर गुण ही ग्रहण करना चाहिए। जहाँ से अमृत मिल सकता है वहाँ से रक्त ग्रहण करना उचित नहीं है।

ज्येष्ठ शुक्ला ११

कर्त्तव्य का फल न दिखने से घबराओ मत। कार्य करना ही अपना कर्त्तव्य समझो, फल की कामना न करो। जो कर्त्तव्य आरम्भ किया है उसी में जुटे रहो, फल आप ही दिखाई देने लगेगा।

*　　*　　*　　*

सच्चे हृदय से सेवा करने वाली घर की स्त्री का अनादर करके वेश्या की प्रशंसा करने वाला जसे नीच गिना जाता है, वैसे ही वह व्यक्ति भी नीच है जो भारत में रहकर अमेरिका और फ्रांस की प्रशंसा करता है और भारतवर्ष की निन्दा करता है!

*　　*　　*　　*

दिल परमात्मा का घर है। परमात्मा मिलेगा तो दिल में ही मिलेगा। दिल में न मिला तो कहीं नहीं मिलेगा।

*　　*　　*　　*

एक विकार ही दूसरे विकार का जनक होता है। आत्मा जब पूर्ण निर्विकार दशा प्राप्त कर लेता है, तब विकार का कारण न रहने से उसमें विकार उत्पन्न होना असम्भव है।

ज्येष्ठ शुक्ला १२

स्मरण रखिए, आप अपने को बड़ा दिखाने के लिए जितनी चेष्टा करते हैं, उतनी ही चेष्टा अगर बड़ा बनने के लिए करें तो आप में दिखावटी बड़प्पन के बदले वास्तविक बड़प्पन प्रकट होगा। तब अपना बड़प्पन दिखाने के लिए आपको तानिक भी प्रयत्न न करना होगा, यही नहीं वरन् आप उसे छिपाने की चेष्टा करेंगे फिर भी वह प्रकट हुए विना नहीं रहेगा। वह इतना ठोस ंगा कि उसके मिट जाने की भी आशङ्का न रहेगी।

ऐसा बड़प्पन पाने के लिए महापुरुषों के चारित का अनुसरण करना चाहिए और जिन सद्गुण रूपी पुष्पों से उनका जीवन सौरभमय बना है उन्हीं पुष्पों से अपने जीवन को भी सुरभित बनाना चाहिए।

* * * *

बाहरी दिखावट, ऊपरी टीमटाम और अभिमान, यह सब तुच्छता की सामग्री है। इससे महत्ता बढ़ती नहीं है, घटती ही है। तुच्छता के मार्ग पर चलकर महत्ता की आशा मत करो। विषपान करके कोई अजर-अमर नहीं बन सकता।

ज्येष्ठ शुक्ला १३

लोग चाहते क्या हैं और करते क्या हैं! वाहवाही चाहते हैं मगर थू-थू के काम करते हैं।

* * * *

अगर आप धर्म को दिपाने वाली छोटी-छोटी बातों का भी पालन न कर सकेंगे तो बड़ी बातों का पालन करके कैसे धर्म को दिपावेंगे? मिल के कपड़े त्याज्य हैं, इस विषय में किसी का मतभेद नहीं है। अगर आप इन्हें भी नहीं छोड़ सकते तो धर्म के बड़े काम कैसे कर सकेंगे?

* * * *

धर्मात्मा में ऐसा प्रभाव अवश्य होना चाहिए कि उसके विना कुछ कहे ही पापी लोग उससे काँपने लगें।

* * * *

ब्रह्मचर्य का संक्षिप्त अर्थ है—इन्द्रिय और मन पर पूर्ण-रूप से आधिपत्य जमा लेना। जो पुरुष अपनी इन्द्रियों पर और मन पर काबू कर लेगा वह आत्मा में ही रमण करेगा, बाहर नहीं।

ज्येष्ठ शुक्ला १४

दुर्गुणों पर और विशेषतः अपने ही दुर्गुणों पर दया दिखाने से हानि ही होती है।

*   *   *   *

जो शारीरिक सुखों की तरफ से सर्वथा निरपेक्ष बन जाता है, वही पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। शरीर को संवारने वाला, शरीर सम्बन्धी टीमटाम करने वाला ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता।

*   *   *   *

अगर भीतरी दुर्गुणों को छिपाने के लिए ही बढ़िया वस्त्र और आभूषण धारण कर लिए, भीतर पाप भरा रहा तो ऐसा पुरुष धिक्कार का पात्र ही गिना जाएगा।

*   *   *   *

शारीरिक गठन और शारीरिक सौन्दर्य उसी का प्रशस्त है जिसमें तप की मात्रा विद्यमान है। सुन्दरता हुई, मगर तपस्या न हुई तो सुन्दरता किस काम की? तपहीन सुन्दर शरीर तो आत्मा को और चक्कर में डालने वाला है।

ज्येष्ठ शुक्ला १५

अपनी विपुल शक्ति को दवा लेना और समय पर शक्ति पर भी उसका प्रयोग न करना बड़े से बड़ा काम है। शक्ति उत्पन्न होना महत्व की बात है मगर उसे पचा लेना और भी बड़ी बात है। महान् सत्त्वशाली पुरुष ही अपनी शक्ति को पचा पाते हैं। सामान्य मनुष्यों को अपनी साधारण-सी शक्ति का भी अजीर्ण हो जाता है।

*　　　*

तप से शरीर क्षीण होता है, यह धारणा भ्रमपूर्ण है। तपस्या करने से शरीर उल्टा नीरोग और अच्छा रहता है। अमेरिका वालों ने बारह करोड़ पौंड केवल उपवासचिकित्सा की खोज और व्यवस्था में व्यय किये हैं। उन्होंने जान लिया है कि उपवास मन, शरीर बुद्धि आदि के लिए अत्यन्त लाभदायक है। उन्होंने अनेक रोगों के लिए उपवासचिकित्सा की हिमायत की है। आपने डाक्टर पर भरोसा करके अपना शरीर डाक्टरों की कृपा पर छोड़ दिया है, आपको उपवास पर विश्वास नहीं है, इसी कारण इतने रोग फैल रहे हैं। शारीरिक लाभ के सिवाय उपवास से इन्द्रियों का निग्रह भी होता है और संयम-पालन में भी सहायता मिलती है।

आषाढ़ कृष्णा १

तप से अशान्ति और अमङ्गल का निवारण होता है। जो तप की शरण में गया है उसे आनन्द-मङ्गल की ही प्राप्ति हुई है।

*　　*　　*　　*

यह संसार तपोमय है। तप से देवता भी काँप उठते हैं और तप के वशवर्त्ती होकर तपस्वी के चरणों का शरण ग्रहण करते हैं। ऋद्धि-सिद्धि, सुख-सम्पत्ति भी तप से ही मिलती है। तीर्थङ्कर की ऋद्धि सब ऋद्धियों में श्रेष्ठ है। वह भी तपस्वी के लिए दूर नहीं है।

*　　*　　*　　*

जिसे परलोक जाने का विश्वास है—परलोक के घर के सम्बन्ध में संशय नहीं है वह यहाँ घर क्यों बनावे ? वह वहीं अपना घर क्यों न बनावे ? यहाँ थोड़े दिन रहना है तो घर बनाने की क्या आवश्यकता है ? घर तो कहीं बनाना ही है; सो ऐसी जगह घर बनाना होगा जहाँ सदैव रह सकें—जिसे छोड़कर फिर भटकना न पड़े। राह चलते, रास्ते में घर बनाना बुद्धिमत्ता नहीं।

आषाढ़ कृष्णा २

बादशाह सिकन्दर ने अन्तिम समय में कहा था—मैंने आप लोगों को कई बार उपदेश दिये हैं, लेकिन एक उपदेश देना बाकी रह गया है, जो अब देता हूँ।

'मैंने हज़ारों-लाखों मनुष्यों के गले काटकर यह सल्तनत खड़ी की और काबू में रक्खी है। मुझे इस सल्तनत पर बड़ा नाज़ था और इसे मैं अपनी समझता था। लेकिन यह दिन आया। मेरे तमाम मंसूबे मिट्टी में मिल गये। सारा ठाठ यहीं रह गया और मैं चलने के लिए तैयार हूँ। मेरी इस मुसाफिरी में साथ देने वाला कोई नहीं है। मुझे अकेले ही जाना पड़ेगा। मैं आया था हाथ बाँधकर और जा रहा हूँ खुले हाथ। अर्थात् जो कुछ लाया था वह भी यहीं रह गया। मेरे साथ सिर्फ नेकी-बदी जाती है, शेष सारा वैभव यहीं रहा जाता है।'

* * * *

सोचना चाहिए—मैं करने योग्य कार्य को छोड़े बैठा हूँ और न करने-योग्य कार्यों में दिन-रात रचा-पचा रहता हूँ। अगर ऐसी ही स्थिति बनी रही तो बाजी हाथ से निकल जाएगी। फिर ठिकाना लगना कठिन है।

आषाढ़ कृष्णा ३

राजकुमारी होकर बिक जाना, अपने ऊपर आरोप लगने देना, सिर मुंडवाना, प्रहार सहन करना, क्या साधारण बात है ? तिस पर उसे हथकड़ी-बेड़ी डाली गई और वह भौंयरे में बन्द कर दी गई। फिर भी धन्य है चन्दनबाला महासती को, जो मुस्कराती ही रही और अपना मन मैला न होने दिया।

* * * *

यह निश्चित है कि एक दिन जाना होगा। जब जाना निश्चित है तो समय रहते जागकर जाने की तैयारी क्यों नहीं करते ? साथ जाने वाली चीज़ के प्रति घोर उपेक्षा क्यों सेवन कर रहे हो ? समय पर जागो और अपने हिताहित का विचार करो।

* * * *

दान, धर्म उत्पन्न होने की भूमि है। दान से ही धर्म होता है। दूसरे से कुछ भी लिए बिना किसी का जीवन ही नहीं निभ सकता। माता-पिता, पृथ्वी, अग्नि आदि से कुछ न कुछ सभी को ग्रहण करना पड़ता है। मगर जो ले तो लेता है किन्तु बदले में कुछ देता नहीं है, वह पापी है।

आषाढ़ कृष्णा ४

वर्त्तमान जीवन स्वल्पकालीन है और भविष्य का जीवन अनन्त है। इसलिए हे भद्र पुरुष! वर्त्तमान के लिए ही यत्न न कर, किन्तु भविष्य को मङ्गलमय बनाने की भी चेष्टा कर।

* * * *

साधारणतया आयु के सौ वर्ष माने जाते हैं, यद्यपि इतने समय तक सब जीवित नहीं रहते। इनमें से दस वर्ष बचपन के गये और बीस वर्ष तक पढ़ाई की। इस तरह तीस वर्ष निकल गये। शेष सत्तर वर्ष के आराम के लिए यदि बीस वर्ष तक पढ़ने की मिहनत उठाते हो तो अनन्त काल के सुख के लिए कितना परिश्रम करना चाहिए? जिसकी बदौलत सदा के लिए सुख मिल सकता है उस धर्म के लिए जरा भी उत्साह न होना कितने बड़े दुर्भाग्य की बात है?

* * * *

अक्सर लोग गाली का बदला गाली से चुकाते हैं, लेकिन भगवान् महावीर का सिद्धान्त यह नहीं है। गाली के बदले गाली देने का नाम ज्ञान नहीं है। अगर कोई गाली देता है तो उससे भी कुछ न कुछ शिक्षा लेना ज्ञान है।

आषाढ़ कृष्णा ५

मुझको मारने वाला मुझे बुरा लगता है तो जिन्हें मैंने मारा है, उन्हें मैं क्यों न बुरा लगा होऊँगा ?

* * * *

जब जाना निश्चित है और यह जानते हो कि शरीर नाशवान् और आत्मा अविनाशी है, तो अविनाशी के लिए अविनाशी घर क्यों नहीं बनाते ?

* * * *

यह जीवन कुछ ही समय का है। इस अल्पकालीन एक जीवन के लिए इतना काम करते हो, दिन-रात पसीना बहाते रहते हो। मगर भविष्य का जीवन तो अनन्त है। उसकी भी कभी चिन्ता करते हो ? क्या तुम यह समझते हो कि सदा-सर्वदा यही जीवन तुम्हारा स्थिर रहेगा ? अगर तुम्हारे आँखें हैं तो दुनिया को देखो। कोई भी सदा के लिए स्थिर रहा है या तुम्हीं अकेले इस दुराशा में फँसे हो ? एक समय आएगा और वह बहुत दूर नहीं है, जब तुम्हारा वैभव तुम पर हँसेगा और तुम रोते हुए उसे छोड़कर अज्ञात दिशा की ओर प्रयाण कर जाओगे।

आषाढ़ कृष्णा ६

अरे प्राणी ! तू इतना पाप करता है सो किस प्रयोजन के लिए ? कितना-सा जीवन है तेरा, जिसके लिए इतना पाप करता है ?

* * * *

अपनी निस्पृहता एवं उदारता को बढ़ाए जाओ। जैसे थोड़े-से जीवन के लिए घर बनाते हो, वैसे ही अनन्त जीवन का भी सोच करो।

* * * *

मछली जब जल में गोता लगाती है तब लोग समझते हैं कि वह डूब मरी। मगर मछली कहती है—डूबने वाला कोई और होगा ! मैं डूबी नहीं हूँ। यह तो मेरी क्रीड़ा है। समुद्र मेरा क्रीड़ास्थल है। इसी प्रकार भक्तजन संसार में भले ही दीखते हों, साधारण पुरुषों की भाँति व्यवहार भले ही करते हों, मगर उनकी भावना में ऐसी विशिष्टता होती है कि संसार में रहते हुए भी वे संसार के प्रभाव से बचते रहते हैं। वे ससार के खारेपन से बचे रहकर मिठास ही ग्रहण करते हैं।

आषाढ़ कृष्णा ७

रे अविवेकी ! तू क्या कर रहा है ? तू कौन है ? कैसा है ? और किस अवस्था में पड़ा है ? जाग, अपने आपको पहचान। अपने स्वरूप को निहार। भ्रम को दूर कर। अज्ञान को त्याग। उठ खड़ा हो। अभी अवसर है इसे हाथ से न जाने दे। ऐसा स्वर्ण अवसर बार-बार हाथ नहीं आता। बुद्धिमान् पुरुष की तरह अवसर से लाभ उठा ले।

* * * *

खारे पानी में रहने वाली मछली को लोग मीठी कहते हैं। भला खारे पानी की मछली मीठी कैसे हो गई ? मछली खारे पानी में रहती हुई भी इस प्रकार श्वास लेती है कि जिससे खारापन मिटकर मीठापन आ जाता है।

समुद्र की भाँति यह संसार भी खारा है। संसार के खारेपन में से जो मिठास उत्पन्न करता है वही सच्चा भक्त है। लेकिन आज के लोग खारे समुद्र से मिठास न निकालकर खारापन ही निकालते हैं, जिससे आप भी मरते हैं और दूसरों को भी मारते हैं। मगर सच्चे भक्त की स्थिति ऐसी नहीं होती। भक्त संसार में रहता हुआ भी उसके खारेपन में नहीं रहता। वह समुद्र में मछली की भाँति मिठास में ही रहता है।

आषाढ़ कृष्णा ८

संसार खारा और अथाह है। इसमें दम घुटकर मरना सम्भव है। लेकिन भक्त लोग अपने भीतर भगवद्भक्तिरूपी ताज़ी हवा भर लेते हैं, जिससे वे संसार में फँसकर मरते नहीं हैं। यद्यपि प्रकट रूप में भक्त और साधारण मनुष्य में कुछ अन्तर नहीं दिखाई देता, लेकिन वास्तव में उनमें महान् अन्तर होता है। भक्त का आत्मा संसार के खारेपन से सदा बचा रहता है।

* * * *

जिस समय आपकी आत्मा अपना स्थान खोजने के लिए खड़ी हो जाएगी, उस समय उसे यह भी मालूम हो जायगा कि उसका घर कहाँ है? आत्मा में यह स्वाभाविक गुण है कि खड़ी होने के बाद वह अपने घर की दिशा को जान लेगी, धोखा नहीं खाएगी। रात-दिन हिंसा में लगे रहने वाले और हिंसा से ही जीवन यापन करने वाले हिंसक प्राणी की आत्मा में भी तेज मौजूद है।

* * * *

मनुष्य अपने सुख, दुःख, इष्ट, अनिष्ट की तराजू पर दूसरों के सुख, दुःख को एवं इष्ट-अनिष्ट को तोले।

आषाढ़ कृष्णा ६

यों तो अचेत अवस्था में पड़े हुए आत्मा में भी राग-द्वेष प्रतीत नहीं होते, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अचेन आत्मा राग-द्वेष से रहित हो गया है। जो आत्मा ज्ञान के आलोक में राग-द्वेष को देखता है—राग-द्वेष के विपाक को जानता है और फिर उसे हेय समझकर उसका नाश करता है, वही राग-द्वेष का विजेता है। दुमुही का क्रुद्ध न होना क्रोध को जीत लेने का प्रमाण नहीं है। क्रोध न करना उसके लिए स्वाभाविक है। अगर कोई सर्प ज्ञानी होकर क्रोध न करे तो कहा जायगा कि उसने क्रोध को जीत लिया है, जैसे चंड-कौशिक ने भगवान् के दर्शन के पश्चात् क्रोध को जीता था। जिसमें जिस वृत्ति का उदय ही नहीं है, वह उस वृत्ति का विजेता नहीं कहा जा सकता। अन्यथा समस्त बालक काम-विजेता कहलाएँगे।

विजय संघर्ष का परिणाम है। विरोधी से संघर्ष करने के पश्चात् विजय पाने वाला विजेता कहलाता है। जिसने संघर्ष ही नहीं किया उसे विजेता का महान् पद प्राप्त नहीं होता। विजय और संघर्ष, दोनों के लिए ज्ञान अनिवार्य है।

आषाढ़ कृष्णा १०

अज्ञानी पुरुष अगर अपने विरोधी को नहीं पहचानता तो वह संघर्ष में कैसे कूद सकता है ? और अगर कूद भी पड़ता है तो विजय के साधनों से अनभिज्ञ होने के कारण विजेता कैसे हो सकता है ?

*   *   *   *

केले के पेड़ के छिलके उतारोगे तो क्या पाओगे ? सिवाय छिलकों के और कुछ भी न मिलेगा। अगर उसे ऐसा ही रहने दोगे और उसमें पानी देते रहोगे तो मधुर फल प्राप्त कर सकोगे। जब केले का वृक्ष छिलके उतारने पर फल नहीं देता और छिलके न उतारने पर फल देता है तो छिलके क्यों उतारे जाएँ ?

यही बात धर्म के विषय में समझना चाहिए। अनेक लोगों को तर्क-वितर्क करके धर्म के छिलके उतारने का व्यसन-सा हो जाता है। मगर यह कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। समझदार लोग धर्म के छिलके उतारने के लिए उद्यत नहीं होते, वे धर्म के मधुर फलों का ही आस्वादन करने के इच्छुक होते हैं।

आषाढ़ कृष्णा ११

संसारीजन मोह एवं अज्ञान के कारण कुटुम्बी-जनों को, धन-दौलत को और सेना आदि को शरणभूत समझ लेते हैं। मगर स्पष्ट है कि वास्तव में इन सब वस्तुओं में शरण देने की शक्ति नहीं है। जब असातावेदनीय के तीव्र उदय से मनुष्य दुःख के कारण व्याकुल बन जाता है तब कोई भी कुटुम्बी उसका त्राण नहीं कर सकता। कालरूपी सिंह, जीवरूपी हिरन पर जब झपटता है तो कोई रक्षण नहीं कर सकता। सेना और धन रक्षक होते तो संसार के असंख्य भूतकालीन सम्राट् और धनकुबेर इस पृथ्वी पर दिखाई देते। मगर आज उनमें से किसी का भी अस्तित्व नहीं है। सभी मृत्यु के शिकार हो गये। विशाल सेना खड़ी रही और धन से परिपूर्ण खजाने पड़े रहे, किसी ने उनकी रक्षा नहीं की। जब संसार का कोई भी पदार्थ स्वयं ही सुरक्षित नहीं है तो वह किसी दूसरे की रक्षा कैसे कर सकता है? संसार को त्राण देने की शक्ति केवल भगवान् में ही है।

* * * *

सच्चे वीर पुरुष किसी भी दूसरी चीज़ पर निर्भर नहीं रहते और न किसी की देखादेखी करते हैं।

आषाढ़ कृष्णा १२

मोह और अज्ञान से आवृत संसारीजन जिसे अर्थ कहते हैं वह वास्तव में अर्थ नहीं, अनर्थ है। अनर्थ वह इस कारण है कि उससे दुःखों की परम्परा का प्रवाह चालू होता है। जो दुःख का कारण है उसे अनर्थ न कहकर अर्थ कैसे कहा जा सकता है?

*　　*　　*　　*

जिसके द्वारा ज्ञान का हरण हो वही सच्चा दुर्गुण है। धन-माल लूटने वाला वैसा वैरी नहीं है, जैसा वैरी सच्ची बुद्धि बिगाड़ने वाला होता है।

*　　*　　*　　*

जैनधर्म किसी की आँख पर पट्टा नहीं बाँधता अर्थात् वह दूसरों की बात सुनने या समझने का निषेध नहीं करता। जैन-धर्म परीक्षा-प्रधानिता का समर्थन करता है और जिन विषयों में तर्क के लिए अवकाश हो उन्हें तर्क से निश्चित कर लेने का आदेश देता है। जैनधर्म विधान करता है कि अपने अन्तर्ज्ञान से पर्दा हटाकर देखो कि आपको क्या मानना चाहिए और क्या नहीं?

आषाढ़ कृष्णा १३

भगवान् ने कहा है—तू मेरी ही आँखों से मत देख अर्थात् मेरे कहने से ही मेरे रास्ते पर मत चल। तू स्वयं भी अपने ज्ञान-चक्षु से देख ले कि मेरा बतलाया मार्ग ठीक है या नहीं? तू अपने नेत्रों से भी देखकर निश्चय करेगा तो अधिक श्रद्धा और उत्साह के साथ उस पथ पर चल सकेगा।

* * * *

जो लोग सुदर्शन सेठ की भाँति परमात्मा से निर्वैर एवं निर्विकार बुद्धि की याचना करते हैं, उन्हीं का मनोरथ पूर्ण होता है। इस बात पर दृढ़ प्रतीति होते ही विरुद्ध वातावरण अनुकूल हो जाता है।

* * * *

मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि भगवान् महावीर के भक्त दीन, कायर, डरपोक नहीं होते। उनमें वीरता, पराक्रम, आत्म-गौरव आदि सद्गुण होते हैं। जिसमें यह सब गुण विद्यमान है वही महावीर का सच्चा अनुयायी है। महावीर का अनुयायी जगत् के लिए अनुकरणीय होता है—उसे देखकर दूसरे लोग अपने जीवन को सुधारते हैं।

आषाढ़ कृष्णा १४

घर में घुसकर छिप बैठने में वीरता या क्षमा नहीं है। जिन्हें दुःख में देखकर देखने वाले भी दुखी हो जावें, पर दुःख पाने वाले उसे दुःख न समझें, बल्कि देखने वालों को भी सान्त्वना दें—हँसा दें, वही सच्चे वीर हैं। इससे बढ़कर दूसरी वीरता नहीं हो सकती। दुःख को सुखरूप में परिणत कर लेना—अपनी संवेदनाशक्ति के ढाँचे में ढालकर दुःख को सुख-रूप में पलट लेना ही भगवान् महावीर की वीरता का आदर्श है।

*　　*　　*　　*

चण्डकौशिक क्रोध की लपलपाती ज्वालाओं में झुलस रहा था और भगवान् महावीर को भी झुलसाना चाहता था, परन्तु भगवान् के अन्तःकरण से करुणा के नीर-कण ऐसे निकले कि चण्डकौशिक का भी अन्तःकरण शान्त हो गया और उसे स्थायी शान्ति का पथ मिल गया।

*　　*　　*　　*

वैश्य वीर होते हैं, कायर नहीं होते। वैश्यों में वीरता नहीं होती, यह मूर्खों का कथन है। वैश्य सुदर्शन की वीरता बेजोड़ थी।

आषाढ़ कृष्णा ३०

नाम पूजनीय नहीं होता, वेष वन्दनीय नहीं होता। पूजा या वन्दना गुणों की होती है और होनी चाहिए।

*　　*　　*　　*

भगवान् का उपदेश सुनने वाले सादा जीवन क्यों नहीं व्यतीत करते? उनमें सुदर्शन सरीखी वीरता क्यों नहीं आ जाती है? आज बहुसंख्यक विचारक भगवान् महावीर के आदर्शों की ओर झुक रहे हैं। उन्हें प्रतीत हो रहा है कि जगत् का कल्याण उन आदर्शों के बिना नहीं हो सकता। पर भगवान् के आदर्शों पर अटल श्रद्धा रखने वाले लोग लापरवाही करते हैं। वे शायद यह विचार कर रह जाते हैं कि यह तो हमारे घर का धर्म है! 'घर की मुर्गी दाल बराबर' यह कहावत प्रसिद्ध है।

*　　*　　*　　*

धर्म आपकी खानदानी चीज़ है, यह समझकर इसके सेवन में ढील मत कीजिए। भगवान् महावीर गन्धहस्ती थे, यह बात आपको अपने व्यवहार से सिद्ध करनी चाहिए। इसे सिद्ध करने के लिए शक्ति सम्पादन करो।

आषाढ़ शुक्ला १

अहङ्कार के द्वारा बड़े होने से कोई बड़ा नहीं होता। सच्चा बड़प्पन दूसरों को बड़ा बनाकर आप छोटे बनने से आता है। मगर संसार इस सच्चाई को नहीं समझता। छोटों पर अत्याचार करना आज बड़प्पन का चिह्न माना जाता है।

*   *   *   *

लोग मौज-शौक त्याग दें, विलासमय जीवन का विसर्जन कर दें तो गरीबों को अपने बोझ से हल्का कर सकते हैं, साथ ही अपने जीवन को भी सुधार के पथ पर अग्रसर कर सकते हैं।

*   *   *   *

क्या विलासितावर्द्धक बारीक वस्त्र पहनने से ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता मिलती है? अगर नहीं, तो अपने जीवन को बिगाड़ने वाले तथा दूसरों को भी दुःख में डालने वाले वस्त्रों को पहनने से क्या लाभ है?

*   *   *   *

धर्म का मुख्य ध्येय आत्मविकास करना है। अगर धर्म से आत्मा का विकास न होता तो धर्म की आवश्यकता ही न होती।

आषाढ़ शुक्ला २

बहिनें चाहे उपवास कर लेंगी, तपस्या करने को तैयार हो जाएँगी परन्तु मौज-शौक त्यागने को तैयार नहीं होतीं। कैसे कहा जा सकता है कि ऐसी बहिनों के दिल में दया है? एक रुपये की खादी का रुपया गरीबों को मिलता है और मिल के कपड़े का रुपया महापाप में जाता है। मिल के कपड़े के लिए दिया हुआ रुपया आपको ही परतन्त्र बनाता है। पर यह सीधा-सादा विचार लोगों को नहीं जँचता। इसका मुख्य कारण समभाव का अभाव है।

*　　*　　*　　*

जिसके हृदय में समभाव विद्यमान है, वह एकान्त में बैठा हुआ भी संसार की भलाई कर रहा है। जिसका हृदय बुरी भावनाओं का केन्द्र बना हुआ है, वह एकान्त में बैठा हुआ भी संसार में आग फैला रहा है।

*　　*　　*　　*

सिद्धों में और हम में जब गुणों की मौलिक समानता है तो जिन गुणों को सिद्ध प्राप्त कर सके हैं, उन्हें हम क्यों नहीं पा सकते?

आषाढ़ शुक्ला ३

समभाव अमृत है, विषमभाव विष है। अमृत से काम न चलकर विष से काम चलेगा, यह कथन जैसे बुद्धिमान् का नहीं, मूर्ख का ही हो सकता है; इसी प्रकार समभाव से नहीं वरन् विषमभाव से संसार चलता है, यह कहना भी मूर्खों का ही है।

* * * *

भाई-भाई में जब खींचातान आरम्भ होती है, एक भाई अपने स्वार्थ को ही प्रधान मानकर दूसरे भाई के स्वार्थ की तरफ फूटी आँख से भी नहीं देखता, तब विषमता उत्पन्न होती है। विषमता का विष किस प्रकार फैलता है और उससे कितना विनाश एवं विध्वंस होता है, यह जानने के लिए राजा कोणिक और वहिलकुमार का दृष्टान्त पर्याप्त है।

* * * *

जिस मनुष्य के हृदय में थोड़े-से भी सुसंस्कार विद्यमान हैं, वह गुणीजनों को देखकर प्रमुदित होता है। मानव-स्वभाव की यह आन्तरिक वृत्ति है, जो नैसर्गिक है। जिसके हृदय में गुणी जनों के देखने पर प्रमोद की लहर नहीं उठती, समझना चाहिए कि उसका हृदय सजीव नहीं है।

आषाढ़ शुक्ला ४

--जगत् अनादिकाल से है और जगत् की भाँति ही सत्य-आदर्श भी अनादि है। व्यक्ति कभी होता है, कभी नहीं; मगर आदर्श स्थायी होता है। जो व्यक्ति जिस आदर्श को अपने जीवन में मूर्त्त-रूप से प्रतिबिंबित करता है, जिसका जीवन जिस आदर्श का प्रतीक बन जाता है, वह आदर्श उसी का कहलाता है। वस्तुतः आदर्श शाश्वत, स्थायी और अनादि अनन्त है।

* * * *

प्रकृति पर ध्यान देकर देखो तो प्रतीत होगा कि प्रकृति ने जो कुछ किया है, उसका एक अंश भी संसार के लोगों ने नहीं किया है। मगर लोग प्रकृति की पूछ तो करते नहीं और संसार के लोगों की पूजा करते हैं। खराब हुई एक आँख डाक्टर ने ठीक कर दी तो लोग आजीवन उसके एहसानमन्द रहते हैं, मगर जिस कुदरत ने आँखें बनाई हैं, उसको जीवन-भर में एक बार भी शायद ही याद करते हैं। कुदरत ने असंख्य आँखें बनाई हैं, डाक्टरों ने कितनी आँखें बनाई हैं? संसारभर के डाक्टर मिलकर कुदरत के समान एक भी आँख नहीं बना सकते।

आषाढ़ शुक्ला ५

मनुष्य-शरीर की तुलना में संसार की कोई भी बहुमूल्य वस्तु नहीं ठहर सकती। इस शरीर के सामने संसार की समस्त सम्पत्ति कौड़ी कीमत की भी नहीं है। ऐसा मूल्यवान् मानव-देह महान् कष्ट सहन करने के पश्चात् प्राप्त हुआ है। न जाने किन-किन योनियों में रहने के बाद आत्मा ने मनुष्ययोनि पाई है। अतएव शरीर का मूल्य समझो और प्राणिमात्र के प्रति समभाव धारण करो। आज तुम जिस जीव के प्रति घृणाभाव धारण करते हो, न जाने कितनी बार उसी जीव के रूप में तुम रह चुके हो। भगवान् का कथन इस सत्य का साक्षी है।

* * * *

स्वार्थलोलुप लोभी-लालची लोग कहते हैं कि समभाव से संसार का काम नहीं चल सकता। मगर जो लोग स्वार्थ छोड़-कर अथवा अपने स्वार्थ के समान ही दूसरों के स्वार्थ को महत्व देकर विचार करते हैं, वे जानते हैं कि समभाव से ही संसार का काम चल सकता है। समभाव से ही संसार स्थिर रह सकता है। समभाव से ही संसार स्वर्ग के समान सुखमय बन सकता है। समभाव से ही जीवन शान्ति और सन्तोष से परिपूर्ण बन सकता है।

आषाढ़ शुक्ला ६

समभाव के विना संसार नरक के समान बनता है। सम-भाव के अभाव में जीवन अस्थिर, अशान्त, क्लेशमय और सन्तापयुक्त बनता है। संसार में जितनी मात्रा में समभाव की वृद्धि होगी, उतनी ही मात्रा में सुख की वृद्धि होगी।

* * * *

पुण्यरूपी डाक्टर ने यह आँखें बनाई हैं। आँख की थोड़ी-सी खराबी मिटाने वाले डाक्टर को याद करते हो, उसके प्रति कृतज्ञ होते हो तो उस पुण्य-रूपी महान् डाक्टर को क्यों भूलते हो? पुण्य की इन आँखों से पाप तो नहीं करते? दुर्भावना से प्रेरित होकर पर-स्त्री की ओर तो नहीं ताकते? भाई! यह आँखें बुरे भाव से परस्त्री को देखने के लिए नहीं हैं।

* * * *

सङ्घ को हानि पहुँचाने वाला व्यक्ति लाखों जीवों को हानि पहुँचाता है। प्रत्येक पुरुष स्वच्छन्द हो तो सङ्घ को हानि पहुँचे बिना नहीं रह सकती। सङ्घ की वह हानि तात्कालिक ही नहीं होती, उसकी परम्परा अगर चल पड़ती है तो दीर्घ-काल तक उससे सङ्घ को हानि पहुँचती रहती है।

आषाढ़ शुक्ला ७

मनुष्य को जो शुभ संयोग प्राप्त हैं, अन्य जीवों को नहीं। मनुष्य-शरीर किस प्रकार मिला है, इसे जानने के लिए पिछली बातें स्मरण करो। अगर आप चिर-अतीत की घटनाओं पर दृष्टिनिपात करेंगे तो आपके रोम-रोम खड़े हो जाएँगे। आप सोचने लगेंगे—रे आत्मा! तुझे कैसी अनमोल वस्तु मिली है और तू उसका कैसा जघन्य उपयोग कर रहा है! हे मानव! तुझे वह शरीर मिला है, जिसमें अर्हन्त, राम आदि पुण्य पुरुष हुए थे। ऐसी उत्तम और अनमोल वस्तु पाकर भी तू इसका दुरुपयोग कर रहा है!

* * * *

वास्तविक उपदेश वही है और वही प्रभावजनक हो सकता है जिसका पालन कर दिखाया जाय। जीवन-व्यवहार द्वारा प्रदर्शित उपदेश अधिक प्रभावशाली, तेजस्वी, स्पष्ट और प्रतीतिजनक होता है।

* * * *

वस्तुतः मुक्तात्मा और ईश्वर में भेद नहीं है। जो मुक्तात्मा है वही ईश्वर है और मुक्तात्मा से उच्च कोई सत्ता नहीं है।

आषाढ़ शुक्ला ८

कर्म तुम्हारे बनाये हुए हैं, कर्मों के बनाये तुम नहीं हो। जो बनता है वह गुलाम है और जो बनाता है वह मालिक है। फिर तुम इतने कायर क्यों हो रहे हो कि अपने बनाए हुए कर्मों से आप ही भयभीत होते हो! कर्म तुम्हारे खेल के खिलौने हैं। तुम कर्मों के खिलौने नहीं हो।

* * * *

प्रथम तो वीर पुरुष सहसा किसी को नमस्कार नहीं करते, और जब एक बार नमस्कार कर लेते हैं तो नमस्करणीय व्यक्ति से फिर किसी प्रकार का दुराव नहीं रखते। वे पूर्णरूप से उसी के हो जाते हैं। उसके लिए सर्वस्व समर्पण करने में कभी पीछे पैर नहीं हटाते।

* * * *

सर्वज्ञ और वीतराग पुरुष ने जिस धर्म का निरूपण किया है, जो धर्म शुद्ध हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा के अनुकूल है और साथ ही युक्ति एवं तर्क से बाधित नहीं होता तथा जिससे व्यक्ति और समष्टि का मङ्गल-साधन होता है, उस धर्म को न त्यागने में ही कल्याण है।

आषाढ़ शुक्ला ६

यह तन तुच्छ है और प्रभु का धर्म महान् है। यह तुच्छ शरीर भी टिकाऊ नहीं है। एक दिन नष्ट हो जाएगा। सो यदि यह शरीर धर्म के लिए नष्ट होता है तो इससे अधिक सद्‌भाग्य की बात और क्या होगी?

* * * *

भक्त भगवान् पर ऐहसान करके उन्हें नमस्कार नहीं करता। भगवान् को नमस्कार करने में भक्त का महान् मङ्गल है। उस मङ्गल की प्राप्ति के लिए ही भक्त भक्तिभाव से प्रेरित होकर भगवान् के चरणों में अपने आपको अर्पित कर देता है।

* * * *

कर्म हमें बुरी तरह नचा रहे हैं, असह्य यातनाओं का पात्र बना रहे हैं और अरिहन्त भगवान् ने उन कर्मों का समूल विनाश कर दिया है। कर्मों की व्याधि से छुटकारा दिलाने वाले महावैद्य वही हो सकते हैं जिन्होंने स्वयं इस व्याधि से मुक्ति पाई है और अनन्त आरोग्य प्राप्त कर लिया है। अरिहंत भगवान् ऐसे ही हैं। इस कारण अरिहन्त भगवान् हमारे नमस्कार के पात्र हैं। वही शक्तिदाता हैं।

आषाढ़ शुक्ला १०

कई लोगों का कहना है कि जिस कर्म के साथ आत्मा का अनादिकाल से सम्बन्ध है, वह नष्ट कैसे हो सकता है? मगर बीज और अंकुर का सम्बन्ध भी अनादिकाल का है। फिर भी बीज को जला देने से उनकी परम्परा का अन्त हो जाता है। इसी प्रकार कर्म की परम्परा का भी अन्त हो सकता है। जिस प्रकार प्रत्येक अंकुर और प्रत्येक बीज सादि ही है, फिर भी दोनों के कार्य-कारण का प्रवाह अनादि है, इसी प्रकार प्रत्येक कर्म सादि है तथापि उसका कार्य-कारण का सम्बन्ध अनादि है।

* * * *

जिसे नमस्कार किया जाता है वह बड़ा है। उस बड़े को अगर सच्चे हृदय से नमस्कार किया है तो उसके लिए— उसके आदर्श के लिए, सिर दे देना भी मुश्किल बात नहीं होनी चाहिए।

* * * *

न्यायोचित व्यापार करने वाला अपने धर्म पर स्थिर रहेगा और जो अन्याय करेगा वह अधर्म की सरिता में डूबेगा।

आषाढ़ शुक्ला ११

मङ्गलपाठ एक ऐसी भाव-औषध है जो निरोग को भी लाभ पहुँचाती है और रोगी को भी विशेष लाभ पहुँचाती है। अतएव प्रत्येक पुरुष उसका पात्र है, बल्कि रोगी अधिक उपयुक्त पात्र है। भला देव, गुरु और धर्म का स्मरण कराना अनुचित कैसे कहा जा सकता है ?

* * * *

साधु विवाह के अवसर पर भी मांगलिक सुनाते हैं। वह इसलिए कि सुनने वालों को ज्ञान हो जाय कि विवाह बन्धन के लिए नहीं है। विवाह गृहस्थी में रहने वालों को पारस्परिक धर्मसम्बन्धी सहायता आदान-प्रदान करने के लिए होता है, धर्म का ध्वंस करने के लिए नहीं, बन्धनों की परम्परा बढ़ाने के लिए भी नहीं। विवाह करके चौपाया—पशु मत बनना, मगर चतुर्भुज—देवता बनना।

* * * *

व्यापार के निमित्त जाने वाले को साधु मङ्गलपाठ (मांगलिक) सुनाते हैं सो इसलिए कि व्यापार के लिए जाने वाला द्रव्य-धन के प्रलोभन में भाव-धन (आत्मिक सम्पत्ति) को न भूल जाय।

आषाढ़ शुक्ला १२

जैसे कोई पुरुष अपने किराये के मकान को छोड़ना नहीं चाहता, फिर भी किराये का पैसा पास में न होने से मकान छोड़ना पड़ता है, इसी प्रकार आत्मा जन्म-मरण के स्वभाव वाला न होने पर भी आयु कर्म की प्रेरणा से विवश होकर जन्म-मरण करता है।

*   *   *   *

जिसका अन्तःकरण वीतराग भाव से विभूषित है, उस महापुरुष को मारने के लिए यदि कोई शत्रु तलवार लेकर आवेगा तो भी वह यही विचारेगा कि मैं मरने वाला नहीं हूँ। जो मरता है या मर सकता है, वह मैं नहीं हूँ। मैं वह हूँ जो मरता नहीं और मर सकता भी नहीं। सच्चिदानन्द, अमूर्तिक और अदृश्य मेरा स्वरूप है। मुझे मारने का सामर्थ्य साधारण पुरुष की तो बात क्या, इन्द्र में भी नहीं है।

*   *   *   *

अपनी मातृभूमि पर प्रेम और भक्तिभाव रखने का अर्थ यह नहीं है कि दूसरे देशों के प्रति द्वेषभाव रक्खा जाय। हमारा राष्ट्रप्रेम, विश्वप्रेम की पहली सीढ़ी होनी चाहिए।

आषाढ़ शुक्ला १३

संसार में अनुरक्त गृहस्थ सांसारिक भोगोपभोग के साधन-भूत पदार्थों के उपार्जन और संरक्षण में कभी-कभी इतना व्यस्त हो जाता है कि वह आत्मकल्याण के सच्चे साधनों को भूल जाता है। उसे भोगोपभोग के साधन ही मङ्गलकारक, शरण-भूत और उत्तम प्रतीत होते हैं। ऐसे लोगों पर अनुग्रह करके उन्हें वास्तविकता का भान कराना साधुओं का कर्त्तव्य है। अतएव साधु मांगलिक श्रवण कराकर उसे सावधान करते हैं—'हे भद्र पुरुष! तू इतना याद रखना कि संसार में चार महा-मङ्गल हैं—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और दयामय धर्म। संसार में चार पदार्थ सर्वश्रेष्ठ हैं—आरिहन्त, सिद्ध, साधु और दयामय धर्म। अतएव तू अपने मन में संकल्प कर ले कि मैं आरिहन्त का शरण ग्रहण करता हूँ, सिद्ध का शरण ग्रहण करता हूँ, मैं सन्तों का शरण ग्रहण करता हूँ, मैं सर्वज्ञ के धर्म का शरण ग्रहण करता हूँ।'

यह मंगलपाठ प्रत्येक अवस्था में सुनाने योग्य है। अगर कोई पुरुष किसी शुभ कार्य के लिए जाते समय मंगलपाठ श्रवण करना चाहे तब तो कोई बात ही नहीं, अगर कोई अशुभ कार्य के लिए जाते समय भी मंगलपाठ सुनना चाहे तो उसे भी साधु यह पाठ सुनाने से इन्कार नहीं करेंगे।

आषाढ़ शुक्ला १४

जिस आत्मा के साथ राग-द्वेष आदि विकारों का संसर्ग है, उसे जन्म-मरण का कष्ट भोगना पड़ता है। ईश्वर सर्वज्ञ है, वीतराग है, स्वाधीन है। किसी भी प्रकार की उपाधियाँ उसे स्पर्श तक नहीं कर सकतीं। ऐसी स्थिति में ईश्वर पुनः जन्म ग्रहण करके अवतीर्ण नहीं हो सकता।

* * * *

जैसे सूर्य का पूर्ण प्रकाश फैल जाने पर कोई दीपक भले ही विद्यमान रहे, फिर भी उसका कोई उपयोग नहीं होता। सब लोग सूर्य के प्रकाश द्वारा ही वस्तुओं को देखते हैं। इसी प्रकार अर्हन् इन्द्रियाँ होने पर भी इन्द्रियों से जानते-देखते नहीं हैं। उनकी इन्द्रियों का होना और न होना समान है।

* * * *

सच्चा मंगल वह है जिसमें अमंगल को लेशमात्र भी अवकाश न हो और जिस मंगल के पश्चात् अमंगल प्रकट न होता हो और साथ ही जिससे सबका समान रूप से कल्याण-साधन हो सकता हो, जिसके निमित्त से किसी को हानि या दुःख न पहुँचे।

आषाढ़ शुक्ला १५

आज नर और नारी की समानता का प्रश्न उपस्थित है। अतएव स्त्रियों के गर्भाशय का ऑपरेशन करके सन्ततिनियमन की बात करने वालों से स्त्रियाँ कहेंगी—'सन्ततिनियमन के लिए हमारे गर्भाशय का ऑपरेशन क्यों किया जाय? पुरुषों को ही सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य क्यों न बना दिया जाय?' इस प्रकार कृत्रिम उपायों से सन्ततिनियमन करने में अनेक मुसीबतें खड़ी हो जाएँगी।

* * * *

जब क्रियामात्र का त्याग करना सम्भव न हो तो पहले उस क्रिया का त्याग करना उचित है, जिससे अधिक पाप होता हो। स्वस्त्री-गमन का त्याग करने से पहले वेश्यागमन का त्याग किया जाता है।

* * * *

जब तुम किसी के सत्कार्य की प्रशंसा करते हो तो तुम्हारा कर्त्तव्य हो जाता है कि उसमें यथाशक्ति योग भी दो। सिर्फ मुँह से वाह-वाह करना और सहयोग तनिक भी न देना यह तो उस कार्य की अवगणना करना है।

श्रावण कृष्णा १

चर्बी लगा वस्त्र, चर्बी-मिश्रित घी और बाजारू दूध तथा दही वगैरह छोड़ दोगे तो तुम्हारे हृदय में अहिंसा का अपूर्व महत्त्व प्रकाशित होगा।

* * * *

ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं, यह समझ भूलभरी है। ऐसा कोई उदाहरण आज तक नहीं देखा गया कि ब्रह्मचर्य के पालन से कोई रोगी हुआ हो। हाँ, ब्रह्मचर्य न पालने से अलबत्ता लोग दुर्बल, निर्वीर्य और अशक्त होकर भाँति-भाँति के रोगों के शिकार होते हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्यलाभ होता है, शक्ति बढ़ती है और वह शक्ति रोगों का स्वतः प्रतीकार करती है।

* * * *

पुरुष स्वयं कामभोग के कीट बने हुए हैं, इसी कारण विधवाविवाह का प्रश्न समाज के सामने खड़ा हुआ है। स्त्री की मृत्यु के बाद अगर पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन करें तो विधवा-विवाह का प्रश्न ही समाप्त हो जाय।

श्रावण कृष्णा २

पुरुष स्त्रियों को अगर अंजना सती के समान बनाना चाहते हैं तो उन्हें स्वयं पवनकुमार के समान बनना चाहिए। स्त्रियों को अगर राजीमती के रूप में देखना चाहते हैं तो पुरुष अरिष्टनेमि बनने का प्रयत्न क्यों नहीं करते?

* * * *

तुम आस्तिक हो, मानते हो कि हम परलोक से आये हैं और परलोक में जाएँगे, तो अपने कर्त्तव्य का भी कुछ विचार करो। अल्पकालीन वर्त्तमान जीवन के लिए अनन्त भविष्य जीवन की उपेक्षा करना बुद्धिमत्ता नहीं है।

* * * *

लोग कहते हैं—उत्पन्न सन्तान को मार डालना पाप है मगर गर्भाशय को नष्ट करके सन्तान की उत्पत्ति रोक देना पाप नहीं है। उन्हें समझना चाहिए कि नदी की मँझधार में मनुष्य को पटक देना जैसे पाप है वैसे ही नौका में छेद कर देना क्या पाप नहीं है? अगर मनुष्य की परोक्ष हिंसा से घृणा नहीं की जायगी तो धीरे-धीरे प्रत्यक्ष हिंसा से भी घृणा नहीं रह जायगी।

श्रावण कृष्णा ३

जो लोग आज शस्त्रक्रिया द्वारा सन्तति रोकने का निर्दयता-पूर्ण उपाय करते हैं, वे कल अपनी लूली-लँगड़ी सन्तान की हत्या कर डालने का भी विचार कर सकते हैं। जब हृदय में दया ही नहीं रहेगी तो यह क्या असम्भव है?

* * * *

सन्तति-नियमन का सर्वश्रेष्ठ उपाय स्त्री-संसर्ग का त्याग करना है। भगवान् अरिष्टनेमि और पितामह भीष्म के पुजारियों को उनका आदर्श अपने सामने सदैव रखना चाहिए।

* * * *

सन्तान स खर्च में वृद्धि और कामभोग में बाधा उपस्थित होती है, इस भावना से सन्तान उत्पन्न न होने देने के उपाय काम में लाये जाते हैं। पर ऐसा करने से एक समय आएगा जब वृद्ध भी भाररूप मालूम होंगे और उनके नाश के भी उपाय सोचे जाने लगेंगे। इसी प्रकार अशक्त होने पर पति, पत्नी को और पत्नी पति को अपने रास्ते का काँटा समझकर अलग करने की सोचेगा। इस प्रकार कृत्रिम साधनों से संतति-नियमन करना घोर विपत्ति को आमन्त्रित करना होगा।

श्रावण कृष्णा ४

आजकल के कई लोगों का कथन है कि ब्रह्मचर्य का पालन किया ही नहीं जा सकता, विषयभोग की कामना पर काबू नहीं पाया जा सकता; पर प्राचीन लोगों का अनुभव इससे विपरीत है। अमुक व्यक्ति कामवासना को नहीं जीत सकता, इस कारण वह सभी के लिए अजेय है, यह समझना भ्रम है। भारतवर्ष का इतिहास इस भ्रम का भलीभाँति निराकरण करता है।

* * * *

विषयलोलुपता की अधिकता के कारण लोगों में अपनी सन्तान के प्रति भी द्रोहभावना उत्पन्न हो गई है। सन्तान को विषयभोग में बाधक मानकर और उस बाधा को दूर करके निर्विघ्न-रूप से विषयभोग भोगने के उद्देश्य से सन्ततिनियमन के कृत्रिम साधनों का उपयोग करने की हिमायत की जाती है।

* * * *

गरीबी और बेकारी के दुःख से बचने के लिए सन्तति-नियमन का जो उपाय बतलाया जा रहा है वह अत्यन्त हानि-कारक, अत्यन्त निन्दनीय और अत्यन्त दूषित है।

श्रावण कृष्णा ५

जिस दृष्टि से सन्ततिनियमन के लिए कृत्रिम उपाय काम में लाये जाते हैं अथवा अच्छे समझे जाते हैं, उनके भावी परिणाम पर विचार किया जायगा तो विदित होगा कि यह विनाश का मार्ग है।

*   *   *   *

बेकार रहना—निठल्ले बैठे रहना भी वीर्यनाश का कारण है। जो लोग अपने शरीर को और मन को अच्छे कामों में नहीं लगा रखते उनका वीर्य स्थिर नहीं रह सकता।

*   *   *   *

जो लोग मिल के बने चटकमटक वाले वस्त्र पहनते हैं, वे एक बार खादी पहन देखें तो उन्हें आप ही पता चल जाएगा कि वस्त्रों के साथ पोशाक का कितना सम्बन्ध है ?

*   *   *   *

प्रसूतिगृह में बहुत-सी स्त्रियों की मृत्यु हो जाने के अनेक कारणों में से छोटी उम्र में सगर्भा हो जाना भी एक कारण है और पुरुषों का अत्याचार भी इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं है।

श्रावण कृष्णा ६

रात में अधिक जागना और सूर्योदय के बाद तक सोते रहना तथा अश्लील पुस्तकें पढ़ना भी चित्तविकार का कारण है। चित्त के विकार से वीर्य का विनाश होता है।

लोग महापुरुषों और महासतियों के जीवनचरित्र पढ़ने के बदले अश्लीलता से भरी पुस्तकें पढ़ते हैं। उन बेचारों को नहीं मालूम कि वे अपने भीतर विष भर रहे हैं।

* * * *

नाटक-सिनेमा की आजकल धूम मची हुई है। मगर उनमें जो अश्लील चित्र प्रदर्शित किये जाते हैं, वे समाज के घोर नैतिक पतन के कारण बने हुए हैं। जो अपने वीर्य की रक्षा करना चाहते हैं उन्हें नाटक-सिनेमा को दूर से ही हाथ जोड़ लेना चाहिए।

* * * *

स्त्रियाँ बेटी को लाड़ करती हैं तो कहती हैं—'तुझे कैसा वींद (वर) चाहिए?' बेटे को लाड़ करती हैं तो कहती हैं—'कैसी वींदणी (वधू) चाहिए?' उन बेचारियों को पता नहीं कि वे अपनी सन्तान के हृदय में ज़हर भर रही हैं।

श्रावण कृष्णा ७

संसार की दशा सुधारने के लिए महापुरुषों ने जो आचरण किया है और जिस रास्ते पर वे चले हैं, उसी पर चलने के लिए वे दुनिया के लोगों को आह्वान कर गये हैं कि—काल की विषमता के कारण कदाचित् तुम्हें सूझ न पड़े कि क्या कर्त्तव्य और क्या अकर्त्तव्य है, तो तुम हमारे आचरण को दृष्टि में रखना। हम जिस मार्ग पर चले हैं उसी मार्ग पर तुम भी चलना। उलटा मार्ग ग्रहण मत करना। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

* * * *

पोशाक का भावना के साथ गहरा सम्बन्ध है। ऐसा न होता तो ब्रह्मचर्यमय जीवन बिताने वालों के लिए खास तरह के वस्त्रों का विधान क्यों किया जाता? जो ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है वह चाहे पुरुष हो या स्त्री, उसकी पोशाक सर्वसाधारण की पोशाक से जुदी होनी चाहिए।

* * * *

शरीर की चर्बी बढ़ जाना शक्ति का प्रतीक नहीं। मनोबल का बढ़ जाना और उसे काबू में रखना ही सच्ची शक्ति है।

श्रावण कृष्णा ८

स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म है तो पुरुषों के लिए पत्नीव्रत धर्म क्यों नहीं है ? धनवान् लोग अपने जीवन का उद्देश्य भोग-विलास करना समझते हैं। स्त्री मर जाए तो भले मर जाए। पैसे के बल पर वे दूसरी शादी कर लेंगे ! इस प्रकार एक-पत्नीव्रत की भावना न होने से अनेक स्त्रियाँ पुरुषों की विषयलोलुपता का शिकार हो रही हैं।

* * * *

पति-पत्नी का एक ही बिस्तर पर शयन करना वीर्यनाश का सबल साधन है। एक ही मकान में और एक ही बिस्तर पर सोने से वीर्य स्थिर नहीं रह सकता। शास्त्र में सब जगह स्त्री और पुरुष का अलग-अलग शयनागार में सोने का वर्णन मिलता है। पर आज लोग इस नियम को भूल गये हैं।

* * * *

जिस वीर्य के प्रताप से बिना दांत गिरे, बिना आँखों की जोत घटे, बिना बाल सफेद हुए सौ वर्ष तक जीवित रहा जा सकता है, उस वीर्य को खराब कामों में या साधारण मौज के लिए नष्ट कर देना कितनी मूढ़ता है ?

श्रावण कृष्णा ९

आज बालकों और वृद्धों का भोजन एक सरीखा हो रहा है। वृद्ध, बालकों को अपने साथ ही भोजन करने बिठलाते हैं और कहते हैं—बालक को साथ बिठलाए विना भोजन कैसे अच्छा लगेगा ? उन्हें पता नहीं कि जिस भोजन में मिर्च-मसाले का उपयोग किया गया है, जो भोजन गरिष्ठ और तामसिक है, वह बालकों के योग्य कैसे कहा जा सकता है ? ऐसे भोजन से बालकों की धातु का क्षय होता है।

* * * *

सधवा और विधवा का तथा विवाहिता और कुमारी का भोजन सरीखा नहीं होना चाहिए। भोजन सम्बन्धी विवेक न होने से तथा भावना शुद्ध न होने से आज की कुमारिकाएँ छोटी उम्र में ऋतुमती हो जाती हैं और फिर उनकी सन्तान निर्बल तथा निस्तेज होती है। अतएव भोजन सम्बन्धी विवेक और भावना की शुद्धता का ध्यान रखना परमावश्यक है।

* * * *

किसी को भोजन देना पुण्य कार्य है, मगर वही सब से बड़ा कार्य नहीं है। बन्धनहीन बनाना सबसे बड़ा कार्य है।

श्रावण कृष्णा १०

चारों ओर घोर अन्धकार फैला हुआ है। इस अंधाधुंधी में लोग इधर-उधर भटक रहे हैं। कोई मनुष्य नागिन को माला समझकर गले में पहन ले या घर में सहेज कर रक्खे तो यही कहा जायगा कि वह अन्धा है—अन्धकार में डूबा हुआ है। कोई कह सकता है कि इतना मूर्ख कौन होगा जो नागिन को माला समझकर गले में पहन ले? पर मैं पूछता हूँ कि चाय क्या नागिन की तरह जहरीली नहीं है? और लोग क्या माला की तरह प्रेम से उसे ग्रहण नहीं कर रहे हैं?

* * * *

माता-पिता को सदैव ऐसी भावना भानी चाहिए कि मेरा पुत्र वीर्यवान् और जगत् का कल्याण करने वाला बने।

कहा जा सकता है कि भावना से क्या लाभ है? उत्तर यह है कि भावना से बड़ा लाभ होता है। लोगों को तरह-तरह के स्वप्न आते हैं, इसका कारण यही है कि उनकी भावना तरह-तरह की होती है। जैसी भावना होती है वैसा ही स्वप्न आता है और सन्तान के विचार भी वैसे ही बनते हैं। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता है उसी प्रकार भावना से सन्तान के विचारों और कार्यों का निर्माण होता है।

श्रावण कृष्णा ११

जिस दिन चाय से होने वाली हानियों का हिसाब लगाया जाएगा, उस दिन अनेक रहस्य खुलेंगे। आजकल चुड़ैल का वहम तो कम होता जा रहा है पर चाय-चुड़ैल ने नया अवतार धारण किया है, जो रात-दिन लोगों का रक्त चूस रही है। इस चुड़ैल की फ़रियाद कहाँ की जांय? न्यायाधीश और राजा—सभी तो इसके गुलाम हैं!

* * * *

चाय, शराब, तमाखू आदि समस्त नशीली वस्तुएँ वीर्य को नष्ट करने वाली हैं। इनके सेवन से प्रजा वीर्यहीन बनती जा रही है। जब आज की प्रजा वीर्यहीन है तो यह भी निश्चित है कि भविष्य की प्रजा और ज्यादा वीर्यहीन होगी। अतएव वीर्यरक्षा के लिए नशीली चीज़ों का त्याग करना आवश्यक है।

* * * *

आप में जो शक्ति और जो साहस है वह वीर्य के ही प्रताप से है। वीर्य के अभाव में मनुष्य चलना-फिरना, उठना-बैठना आदि कार्य भी तो नहीं कर सकता!

श्रावण कृष्णा १२

अपनी जीभ पर अंकुश रखना ब्रह्मचारी के लिए अत्यावश्यक है। जो जीभ का गुलाम है उसे ब्रह्मचर्य से भी हाथ धोना पड़ता है। अतएव ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए सदैव भोजन के सम्बन्ध में विवेक रखना चाहिये।

* * * *

तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल ब्रह्मचर्य है। जैसे वृक्ष के तने, डाली, फल-फूल-पत्तों का आधार मूल—जड़ है, जड़ के होने पर ही फल-फूल आदि होते हैं, जड़ के सूख जाने पर यह सब कायम नहीं रह सकते, इसी प्रकार समस्त उत्तम क्रियाओं का मूल ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य की मौजूदगी में ही उत्तम क्रियाएँ निभ सकती हैं। शुभ क्रियाओं में तप का स्थान पहला है और ब्रह्मचर्य के अभाव में तप सार्थक सिद्ध नहीं होता।

* * * *

वीर्य को वृथा बर्बाद करने के बराबर कोई बुराई नहीं है। ऐसा करना घोर अन्याय है और अपने पैर पर आप ही कुल्हाड़ा मारना है।

श्रावण कृष्णा १३

ब्रह्मचर्य की शक्ति पर विचार करने पर शायद ही कोई सभ्य पुरुष होगा जो यह स्वीकार न करे कि हमारे भीतर जो शक्ति है वह ब्रह्मचर्य की ही शक्ति है। तुम ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा गाते हो उससे बहुत अधिक महिमा शास्त्र में गाई गई है।

* * * *

यह बुद्धिवाद का युग है। बुद्धि की कसौटी पर कसने के बाद ही आज कोई बात स्वीकार की जाती है। मगर मैं यह कहता हूँ कि हृदय की कसौटी पर कसने के बाद तुम मेरी बात मानो। बुद्धि की अपेक्षा हृदय की कसौटी अधिक विश्वस-नीय है। सभी ज्ञानी पुरुषों ने यही कहा है।

* * * *

गुरु तो गुरु हैं ही, मगर सङ्कट भी गुरु है। सङ्कट से उपयोगी शिक्षाएँ मिलती हैं।

* * * *

मनुष्य में जितनी ज्यादा विनयशीलता होगी, उसकी पुण्याई उतनी ही ज्यादा बढ़ेगी।

श्रावण कृष्णा १४

पूर्ण ब्रह्मचारी को समस्त शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, कोई भी शक्ति उसके लिए शेष नहीं रहती। भले ही कोई शक्ति प्रत्यक्ष न दीखती हो लेकिन उसके पीछे अगर शास्त्र की कल्पना है तो उसे मानने से कोई हानि न होगी।

* * * *

आज देश में जहाँ-तहाँ रोग, शोक, दारिद्रता आदि का दर्शन होता है, इन सबका प्रधान और मूल कारण वीर्यनाश है। निकम्मी चीज़ समझकर अज्ञानी लोग वीर्य का दुरुपयोग करते हैं। वीर्य में क्या-क्या शक्तियाँ हैं, यह बात न जानने के कारण ही लोग विषयभोग में वीर्य को नष्ट कर रहे हैं और उसी में आनन्द मान रहे हैं। जब ज्यादा सन्तान उत्पन्न हो जाती है तो घबराने लगते हैं; फिर भी उनसे विषयभोग का त्याग करते नहीं बनता। भारतीयों के लिए यह अत्यन्त ही विचारणीय है।

* * * *

भोग में डूबा रहने वाला वर्त्तमान जीवन में ही नरक का निर्माण कर लेता है।

श्रावण कृष्णा ३०

समस्त इन्द्रियों पर अंकुश रखना, इन्द्रियों को विषयभोग में प्रवृत्त न होने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य कहलाता है और सिर्फ वीर्य की रक्षा करना अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। अपूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जाता है।

* * * *

भले ही विदेशी लोग ब्रह्मचर्य का महत्त्व न जानते हों, परन्तु भारतवर्ष में ऐसे-ऐसे महान् ब्रह्मचारी हो गए हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य द्वारा अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त करके जगत् को यह दिखलाया है कि ब्रह्मचर्य के मार्ग पर चलने से ही मानव-समाज का कल्याण हो सकता है।

* * * *

फलां आदमी खराब है, अमुक में यह दोष है, इस प्रकार दूसरों की आलोचना करने वाले बहुत हैं परन्तु अपनी आलोचना करने वाले कम। लोग यह समझना ही नहीं चाहते कि हम में कोई दोष है या नहीं? ऐसे लोग दूसरों का क्या सुधार करेंगे जो अपने सुधार की बात भी नहीं सोच सकते? सच्चा सुधारक अपने से ही सुधार आरम्भ करता है।

श्रावण शुक्ला १

छुटपन में बहुत-सी चीजें देखी हुई नहीं होतीं, लेकिन माता के कथन पर विश्वास रखने से तुम्हें हानि हुई या लाभ हुआ ? बचपन में कदाचित् तुम साँप को साँप भी नहीं मानते थे, फिर भी माता की बात पर विश्वास रखकर तुम साँप को साँप समझ सके और उसके डँसे जाने से बच सके। तो जिनके अन्तःकरण में माता के समान दया रही हुई है, उन ज्ञानियों पर विश्वास रखने से तुम्हें किस प्रकार हानि होगी ? अतएव जब ज्ञानी कहते हैं कि परमात्मा है और उसकी प्रार्थना करने से जीवन में शान्ति मिलती है, तो उनके कथन पर विश्वास रक्खो। इससे तुम्हें हानि नहीं, लाभ ही होगा।

* * * *

ब्रह्मचर्य किसी साधारण आदमी के दिमाग की उपज नहीं है। यह तो महापुरुषों द्वारा बतलाये हुए सिद्धान्तों में से एक परम सिद्धान्त है।

* * * *

धर्म, व्यक्ति और समाज का जीवन है। जिन्हें जीवन पसन्द नहीं है वे धर्म से दूर रह सकते हैं।

श्रावण शुक्ला २

परमात्मा के प्रति विश्वास स्थिर क्यों नहीं रहता ? इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानियों का कथन है कि साधना की कमी के कारण ही विश्वास में अस्थिरता आती है । उस साधना में ब्रह्मचर्य का स्थान बहुत ऊँचा है ।

* * * *

उपनिषद् में कहा है—तपो वै ब्रह्मचर्यम् । अर्थात् ब्रह्मचर्य ही तप है । जिस तप में ब्रह्मचर्य को स्थान नहीं वह वास्तव में तप ही नहीं है । मूल के अभाव में वृक्ष नहीं होता, इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के अभाव में तप नहीं होता ।

* * * *

दूसरों को कष्ट से मुक्त करने के लिए स्वयं कष्टसहिष्णु बनो और दूसरे के सुख में अपना सुख मानो । मानवधर्म की यह पहली सीढ़ी है ।

* * * *

चाह करने से धन नहीं आता । हृदय में त्याग की भावना हो तो लक्ष्मी दौड़कर चली आती है ।

श्रावण शुक्ला ३

स्वतन्त्रता तो सभी चाहते हैं, लेकिन जो लोग आकाश में स्वैर विहार करने की भाँति केवल लम्बे-लम्बे भाषण करना ही जानते हैं वे परतन्त्रता का जाल नहीं काट सकते। यह जाल तो ज़मीन खोदने वाले किसान ही काट सकते हैं।

* * * *

नीति दिमाग की पैदाइश है, धर्म हृदय की। नीति अपनी ही रक्षा करने का विधान करती है, अपने आश्रित लोग भले ही भाड़ में जाएँ। मगर धर्म का विधान यह है कि स्वयं चाहे कष्ट सहन करो परन्तु दूसरों को सुखी बनाओ।

धर्म कहता है—'दो।' नीति कहती है—'लाए जाओ।' नीति की नज़र स्वार्थ पर और धर्म की दृष्टि परमार्थ पर लगी रहती है।

* * * *

चर्म-चक्षुओं से परमात्मा दिखाई नहीं देता तो इससे क्या हुआ ? चर्मचक्षुओं के सिवाय हृदयचक्षु भी तो है, और उससे परोक्ष वस्तु जानी भी जाती है। उसी से परमात्मा को देखो।

श्रावण शुक्ला ४

'हम मनुष्य तो हैं ही, फिर मानवधर्म की हमें आवश्यकता ही क्या है ?' ऐसा कहने वाले लोग जिस डाली पर बैठे हैं उसी को काटने वाले की श्रेणी में आने योग्य हैं। उन्हें मालूम नहीं कि उनकी प्राणरक्षा मानवधर्म की बदौलत ही हो रही है। अगर माता मानवधर्म का पालन न करती और बच्चे को जनमते ही बाहर फैंक देती तो जीवन-रक्षा कैसे होती ?

क्या तुम ऐसी पत्नी नहीं चाहते जो स्त्रीधर्म का पालन करे ? तो फिर साधारण मानवधर्म का पालन स्वयं क्यों नहीं करना चाहते ? मानवधर्म का पालन करने के लिए ही पिता, सन्तान का पालन-पोषण करता है। इस प्रकार धर्म की सहायता के बिना संसार एक श्वास भी तो नहीं ले सकता। फिर भी लोग धर्म की महिमा नहीं समझते, यही आश्चर्य है।

* * * *

पति और पत्नी मिलकर दम्पती हैं। दोनों में एकरूपता है। दम्पती के बीच अधिकारों को लेने की समस्या ही खड़ी नहीं होती। वहाँ समर्पण की भावना ही प्रधान है।

श्रावण शुक्ला ५

मातृप्रेम क समान संसार में और कोई प्रेम नहीं। मातृ-प्रेम संसार की सर्वोत्तम विभूति है, संसार का अमृत है। अतएव जब तक पुत्र गृहस्थजीवन से पृथक् होकर साधु नहीं बना है तब तक माता उसके लिए देवता है।

* * * *

अहङ्कार का त्याग करके नम्रता धारण करने वाले, मनुष्य-रूप में देव हैं; चाहे वे कितने ही गरीब हों। जिसके सिर पर अहङ्कार का भूत सवार रहता है, वह धनवान् होकर भी तुच्छ है, नगण्य है।

* * * *

ज्ञान बड़ा है और कल्याणकारी है; लेकिन पुरुष है। भक्ति स्त्री है। ज्ञान और भक्ति के बीच में माया नाम की एक स्त्री और है। पुरुष को तो स्त्री छल सकती है, लेकिन स्त्री को स्त्री नहीं छल सकती। अगर ज्ञान, माया द्वारा छला न जाय तो वह भक्ति से ऊँचा है। मगर भक्ति तो पहले ही नम्र है और स्त्री है। माया भक्ति को नहीं छल सकती। इसलिए ज्ञान और भक्ति में भक्ति ही बड़ी है।

श्रावण शुक्ला ६

मिहनत-मजूरी करके उदर-पोषण करने में न लज्जा है, न और कोई बुराई है। लज्जा की बात तो माँगकर खाना है।

* * * *

पत्नी का पति के प्रति जो अनुराग होता है, उसी अनुराग को अगर आगे बढ़ाकर परमात्मा के साथ जोड़ दिया जाय तो वह वीतरागता के रूप में परिणत हो जाता है और आत्मा को तार देता है।

* * * *

अरे प्राणी! सोता मत रह। जाग। उठ। भाग। भागने के समय पड़ा क्यों है? तीन भयानक लुटेरे तेरे पीछे पड़े हैं। जन्म, जरा और मरण तुझे अपना शिकार बनाना चाहते हैं और तू अचेत पड़ा है! प्राणों के रहने पर ही बचने की चेष्टा की जा सकती है। सामने श्मशान है। वहाँ भस्म होना है और यहाँ शृङ्गार सज रहा है! जो शरीर भस्म बनने वाला है उसे सजा रहा है और जो साथ जाने वाला है उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता!

श्रावण शुक्ला ७

अब तक तुम संसार की किसी भी वस्तु के नाथ बने रहोगे तब तक तुम्हारे सिर पर नाथ रहेगा ही। अगर तुम्हारी इच्छा है कि कोई तुम्हारा नाथ न रहे तो तुम किसी के नाथ मत रहो। अर्थात् जगत् की वस्तुओं पर से अपना स्वामित्व हटा लो, ममत्व त्याग दो, यह समझ लो कि न तुम किसी के हो, न कोई तुम्हारा है।

* * * *

व्यक्ति की अपेक्षा उस समूह का, जिसमें वह स्वयं भी सम्मिलित है, सदैव अधिक मूल्य ठहरेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि एक व्यक्ति की रक्षा की अपेक्षा सम्पूर्ण विश्व की रक्षा का कार्य अधिक महत्वपूर्ण, उपयोगी और श्रेयस्कर है।

* * * *

लोग जैसे शस्त्र में रक्षा समझते हैं, उसी प्रकार पर्दे में ही लज्जा समझते हैं। मगर दोनों मान्यताएँ भूल से भरी हैं। घूंघट काढ़ लेना असली लज्जा नहीं है। असली लज्जा है—परपुरुष को भ्राता, पुत्र समझना और वैसा ही उनके साथ व्यवहार करना।

श्रावण शुक्ला ८

गाफ़िल ! किसके भरोसे बैठा है ? कौन तेरी रक्षा करेगा ? फौज ? फौज रक्षा करने में समर्थ होती तो चक्रवर्त्ती क्यों उसे त्यागते ? परिवार तेरी रक्षा करेगा ? ऐसा होता तो कोई मरता ही क्यों ? संसार की कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो मनुष्य को मृत्यु का ग्रास होने से बचा सके। काल इतना बलवान् है कि लाख प्रबन्ध करने पर भी आ ही धमकता है। इसलिए निर्भय और अमर बनने का वास्तविक उपाय कर।

* * * *

मनोरम महल और दिव्य वैभव पुण्य की भौतिक प्रतिमा है। पुण्य, दान में रहता है, आदान में नहीं। जो दूसरों का सत्व चूस-चूसकर मोटा होना चाहता है, वह मोटा भले ही बन जाय पर पुण्य के लिहाज़ से वह क्षीण होता जाता है, वह पुण्य के वैभव से दरिद्र होता रहता है। इसके विपरीत, जो आधी में से भी आधी देता है, वह ऊपर से भले ही दरिद्र दिखाई देता हो पर भीतर ही भीतर उसका पुण्य का भंडार बढ़ता जाता है। उसी पुण्य के भंडार में से महलों का निर्माण होता है और वैभव उसके चरणों में लोटने लगता है।

श्रावण शुक्ला ६

असल पूंजी पुण्य है। जहाँ पुण्य है वहाँ दूसरे सहायकों की आवश्यकता नहीं रहती। पुण्य अकेला ही करोड़ों सहायकों से भी प्रबलतर सहायक है। पुण्य, त्याग और सद्भाव में ही रहता है। भोग पुण्य के फल हैं किन्तु पुण्य को क्षीण बना देते हैं।

*　　*　　*　　*

जिस घर को आप अपना समझते हैं, उसमें क्या चूहे नहीं रहते ? फिर वह घर आपका ही है, उनका नहीं है, ऐसा क्यों ? क्या आप भी चूहे की तरह ही थोड़े दिनों में उसे छोड़कर नहीं चल देंगे ? वास्तव में संसार में आपका क्या है ? कौनसी वस्तु आपका सदा साथ देने वाली है ? किस वस्तु को पाकर आपके सकल सङ्कट टल जाएँगे। शाश्वत कल्याण का द्वार किससे खुल जाता है ?

*　　*　　*　　*

दैवी कृपा प्राप्त होना बड़ी बात अवश्य है, मगर वह धर्मकृत्य का फल ही है। धर्म का फल तो अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, सुखों से सम्पन्न सिद्धि-प्राप्त होना है।

श्रावण शुक्ला १०

अगर आप अपने परिवार में शान्ति और प्रेम का वायु-मण्डल कायम रखना चाहते हैं तो अणुमात्र भी पक्षपात को हृदय में न घुसने दो। जहां वस्तु का समान रूप से विभाग नहीं होता वहाँ क्लेश होने की सम्भावना रहती है और जहाँ क्लेश हुआ वहाँ परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है।

*　　　*　　　*　　　*

ऋद्धि वास्तव में पुण्य से मिलता है, अतएव धन के लोभ में पड़कर पाप मत करो। पाप से धन का विनाश होगा, धन का लाभ नहीं हो सकता। यदि इस सच्चाई पर तुम्हारा विश्वास है तो फिर धनवान् बनने के लिए पाप का मार्ग क्यों स्वीकार करते हो ?

*　　　*　　　*　　　*

संयमी साधु मानव-जीवन की उच्चतम अवस्था का वास्तविक चित्र उपस्थित करते हैं, तप और त्याग की महिमा प्रदर्शित करते हैं और उन पवित्र भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके सहारे जगत् टिका हुआ है और जिनके अभाव में मनुष्य, मनुष्य मिटकर राक्षस बन जाता है।

श्रावण शुक्ला ११

जन्म देने वाली तो सिर्फ माता ही है, मगर जन्मभूमि बड़ी माता है, जिसके अन्न-पानी से माता के भी शरीर का निर्माण हुआ है। जो जन्मभूमि की भक्ति के महत्त्व को समझेगा वह देवलोक के रत्नों को भी धिक्कार देगा।

* * * *

प्रत्येक वस्तु में गुण और अवगुण—दोनों मिलते हैं। वस्तु को देखने के दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। एक आदमी किसी की महान् ऋद्धि देखकर ईर्षा से जल उठेगा और पाप का बंध कर लेगा और दूसरा, जो सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी है, विचार करेगा कि इस ऋद्धि को देखकर हमें सुकृत्य करने की शिक्षा लेना चाहिए।

* * * *

भारतवर्ष में उस समय जीवन की कला अपनी चरम सीमा पर पहुँची थी जब बड़े-बड़े सम्राट् और चक्रवर्ती भी अपनी ऋद्धि को त्याग कर भिक्षुक और अनगार का जीवन व्यतीत करते थे एवं शुद्ध आत्मकल्याण के ध्येय में लग जाते थे। तभी संसार त्याग का महत्त्व समझा था।

श्रावण शुक्ला १२

भारतीयों में ऐसी दैन्य-भावना घुस गई है कि हम अपने देश के प्राचीन विज्ञान के विकास पर पहले अश्रद्धा ही प्रकट करते हैं। जब वही बात कोई पाश्चात्य वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला देता है तो कहने लगते हैं—यह बात तो हमारे शास्त्रों में भी लिखी है। मेरा विश्वास है, अगर भारतीय इस अश्रद्धा को हटाकर, दृढ़ विश्वास के साथ खोज में लग जाएँ तो वे विज्ञान के विकास में सर्वश्रेष्ठ भाग अदा कर सकते हैं। हमारे दर्शनशास्त्रों में बहुत-सी बातें सिद्धान्तरूप से वर्णित हैं, उन्हें प्रयोगों द्वारा यन्त्रों की सहायता से व्यक्त करने की ही आवश्यकता है। मगर ऐसा करने के लिए धैर्य चाहिए, श्रद्धा चाहिए और उद्योगशीलता चाहिए।

* * * *

भक्त का और पतिव्रता का पंथ एक ही है। अगर वे आराम चाहें तो अपने अभीष्ट ध्येय तक नहीं पहुँच सकते। सीता अगर महलों में ही रहती तो उसमें वह शक्ति नहीं आ सकती थी जो राम के साथ वन जाने के कारण आ सकी। रावण को राम ने नहीं, वरन् सीता ने ही हराकर स्त्री-जाति का मुख उज्ज्वल किया है।

श्रावण शुक्ला १३

अधिकांश लोगों को 'लक्ष्मी' चाहिए, 'लक्ष्मीपति' नहीं चाहिए। 'दाम' चाहिए, 'राम' नहीं चाहिए। यह चाह रावण की चाह सरीखी है। रावण ने सीता को चाहा, राम को नहीं चाहा। इसका फल क्या हुआ? सर्वनाश!

* * * *

पुण्यानुबंधी पुण्य मनुष्य को दिन-दिन अभ्युदय की ओर ले जाता है और ऐसी ऋद्धि दिलाता है कि उससे ऋद्धिमान् भी सुखी होता है और दूसरे भी। इस पुण्य के उदय से मनुष्य अद्भुत ऋद्धि पा करके भी उसमें फँस नहीं जाता किन्तु जैसे मक्खी मिश्री का रस लेकर उड़ जाती है, उसी प्रकार ऋद्धि को भोगकर मनुष्य उससे विरक्त हो जाता है और तब उसका त्याग करके आगे के उन्नतर चरित्र का निर्माण करता है।

* * * *

मौज-शौक वाला जीवन जल्दी नष्ट हो जाता है। ऐसा जीवन काच के खिलौने के समान है, जिसके टूटने में देर नहीं लगती और सादा जीवन हीरे के समान है जो घनों की चोट सहने पर भी अखण्ड रहता है।

श्रावण शुक्ला १४

कदाचित् आप दूसरों के विषय में ठीक फैसला दे सकते हैं, मगर इससे आपका क्या भला होगा ? आपकी भलाई इसमें है कि आप अपने विषय में यथार्थ फैसला कर सकें।

* * * *

अगर आपका मन धर्म में लीन है तो देवता आपके वश में हो सकते हैं। मन आप में डूबा रहे और देवों की सहायता की इच्छा की जाय तो देव आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे।

* * * *

दूसरे का भोजन छीनकर आप खा जाना वस्तुतः पुण्य नहीं है। यह कैसे उचित माना जा सकता है कि बहुतों को रूखी रोटियाँ भी न मिलें और आप बादामपाक उड़ावें।

* * * *

हीरा, सोने में जड़ा जाता है तब भी चमकता है और जब घनों से कूटा जाता है तब भी चमकता रहता है। इसी प्रकार सुख-दुःख में समान भाव रखने वाला व्यक्ति ही वास्तव में भाग्यशाली है।

श्रावण शुक्ला १५

लक्ष्मी उसी का आश्रय लेती है जो स्वामी बनकर उसका पालन करे। दास बनने वालों पर लक्ष्मी पूरी तरह नहीं रीझती और लक्ष्मी का स्वामी बनने का अर्थ यही है कि उससे दूसरों की सेवा की जाय। सुपात्रदान देना, परोपकार में उसका व्यय करना, आसक्ति न रखना, यह लक्ष्मीपति के लक्षण हैं।

*　　*　　*　　*

रजोगुण और तमोगुण की शक्ति का फल चर्मचक्षुओं से दिखाई देता है, अतएव लोग समझ लेते हैं कि इनसे आगे कोई शक्ति नहीं है। लेकिन इनसे भी परे की, तीसरी सतोगुण की शक्ति की ओर ध्यान दोगे तो मालूम होगा कि वह कितनी जबर्दस्त और अद्भुत है! संसार के सब झगड़े रजोगुण और तमोगुण तक ही पहुँचते हैं। सतोगुण तक उनकी पहुँच नहीं हो पाती।

*　　*　　*　　*

जैसे सोने की कीमत आग में तपाने से बढ़ जाती है, उसी प्रकार स्त्री की कीमत कष्ट सहन करके धर्म को दिपाने में है, भोग-विलास में पड़ी रहने से नहीं।

भाद्रपद कृष्णा १

वही कथा श्रेष्ठ समझी जानी चाहिए जिसमें भोग के वर्णन के साथ त्याग का भी वर्णन किया गया हो। इसी आदर्श में जीवन की सम्पूर्णता है। केवल भोग, जीवन की मलीनता है। जैन परम्परा जीवन को भोग की मलीनता में से निकालकर त्याग और संयम की उज्ज्वलता में प्रतिष्ठित करना ही उचित मानती है।

* * * *

जिस सिक्के ने मनुष्य-समाज को मुसीबत में डाल दिया है, उसे लक्ष्मी का पद कैसे दिया जा सकता है? समाज में फैली हुई यह विषमता और यह वर्गयुद्ध सिक्के की ही देन हैं।

* * * *

धर्म अगर छूत की बीमारी की तरह होता, उसका फल दुनिया में दुःख फैलाने वाला, सुव्यवस्था में बाधा पहुँचाने वाला होता तो तीर्थङ्कर, अवतार और दूसरे महापुरुष उसकी जड़ मजबूत करने के लिए क्या इतना उद्योग करते? जिन लोगों ने धर्म के शास्त्र का मनन किया है, वे जानते हैं कि धर्म, परलोक में ही सुख देने वाला नहीं, इहलोक में भी कल्याणकारी है।

भाद्रपद कृष्णा २

पुत्र का जन्म होने पर हर्ष और पुत्री के जन्म पर विषाद अनुभव करना लोगों की नादानी है। पुत्री के बिना जगत् स्थिर ही कैसे रह सकता है? अगर किसी के भी घर पुत्री का जन्म न हो तो पुत्र क्या आकाश से टपकने लगेंगे? सामाजिक व्यवस्था की विषमता के कारण पुत्र-पुत्री में इतना कृत्रिम अन्तर पड़ गया है। पर यह समाज का दूषित पक्षपात है। जिस पेट से पुत्र का जन्म होता है, उसी पेट से पुत्री का। फिर पुत्री को हीन क्यों समझा जाता है? सांसारिक स्वार्थ के वश में होकर पुत्री को जन्म देने वाली माता भी पुत्री के जन्म से उदास हो जाती है। ऐसी बहिनों से पूछना चाहिए कि 'क्या तुम स्त्री नहीं हो? स्त्री होकर भी स्त्रीजाति के प्रति द्वेष रखना कितनी जघन्य मनोवृत्ति है! जहाँ ऐसे तुच्छ विचार हों वहाँ सन्तान के अच्छे होने की क्या आशा की जा सकती है? और संसार का कल्याण किस प्रकार हो सकता है?

* * * *

वह अच्छी गृहिणी है जो अपने सद्गुणों से पति को मुग्ध कर ले। वह शृङ्गार करे या न करे, सादा रहे, पर जो काम करे ऐसा करे कि पति को परमात्मा का स्मरण होता रहे।

भाद्रपद कृष्णा ३

लड़की की बड़ाई इस बात में है कि वह अपने माँ-बाप के घर से सास-सुसर के घर जाकर उन्हें ही अपना माँ-बाप माने; माँ-बाप मानकर उनकी सेवा करे और समझे कि इनकी सेवा के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। जो माँ-बाप अपनी बेटी की भलाई चाहते हैं उन्हें ऐसे संस्कार बेटी को अवश्य देने चाहिए।

* * * *

वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य के मास्तिष्क की महिमा को भले प्रकट करती हो, पर उससे मनुष्यता जरा भी विकसित नहीं हुई है। जो विज्ञान मनुष्य की मनुष्यता नहीं बढ़ाता, बल्कि उसे घटाता है और पशुता की वृद्धि करता है, वह मानवजाति के लिए हितकर नहीं हो सकता।

* * *

जब तक बालक का आहार माता के आहार पर निर्भर है तब तक माता को यह अधिकार नहीं कि वह उपवास करे। दया मूलगुण है और उपवास उत्तरगुण है। मूलगुण का घात करके उत्तर गुण की क्रिया करना ठीक नहीं।

भाद्रपद कृष्णा ४

दुनिया की जिस वस्तु के साथ तुम अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हो, उस वस्तु से पहले पूछ देखो कि वह तुम्हें छोड़कर तो नहीं चली जायगी? यही क्यों, अपने हाथ, पैर, नाक, कान आदि अङ्गों से ही पूछ लो कि वे अन्त तक तुम्हारा साथ देंगे या नहीं? अधबीच में ही दगा तो नहीं दे जाएँगे? अगर दगा दे जाने की सम्भावना है तो उन्हें तुम अपना कैसे मान सकते हो? उनके साथ आत्मीयता का संबंध किस प्रकार स्थापित कर सकते हो?

* * * *

जो स्त्रियाँ गर्भवती होकर भी भोग का त्याग नहीं करतीं, वे अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ा मारती हैं। इस नीचता से बढ़कर कोई और नीचता नहीं हो सकती। ऐसा करना नैतिक दृष्टि से घोर पाप है और वैद्यक की दृष्टि से अत्यन्त अहितकर है। पतिव्रता का यह अर्थ नहीं कि वह पति की ऐसी आज्ञा का पालन करके गर्भस्थ बालक की रक्षा न करे। माता को ऐसे अवसर पर सिंहनी बनना चाहिए, शक्ति बनना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करके बालक की रक्षा करनी चाहिए।

भाद्रपद कृष्णा ५

अरे क्षुद्र शक्ति वाले मानव-कीट ! तुझे भविष्य की बात सोचने का अधिकार ही क्या है ? जल के बुलबुले की तरह अपने कभी भी समाप्त हो जाने वाले जीवन को लेकर तू मंसूबों के ढेर लगा देता है ! जानता नहीं, तेरी शक्ति अदृष्ट के इशारों पर नाचती है !

* * * *

जो बच्चे अभी व्यवहार को समझ भी नहीं पाये हैं, जिनके शरीर की कली अभी तक खिल भी नहीं पाई है, जिन्होंने धर्म को नहीं समझ पाया है, उनके सिर पर विवाह का उत्तरदायित्व लाद देना कहाँ तक योग्य है ? ऐसा करने वाले धोखा खाते हैं। आश्चर्य है फिर भी उनकी अक्ल ठिकाने नहीं आती।

* * * *

आप भगवान् का जाप करते हैं सो अच्छी बात है, पर उसकी सार्थकता तभी है जब 'परस्त्री माता' का जाप भी जपें। 'परस्त्री माता' का जाप जपने से आत्मा में बल और जागृति उत्पन्न होती है।

भाद्रपद कृष्णा ६

वे महापुरुष धन्य हैं जो अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। मगर जिनमें ब्रह्मचर्य पालन करने का धैर्य नहीं है, उन पर जबर्दस्ती यह बोझा नहीं लादा जाता। फिर भी विवाहित लोगों को उनका आदर्श अपने सामने रखना चाहिए और इस तत्त्व पर पहुँचना चाहिए कि धीरे-धीरे वे पति-पत्नी मिटकर भाई-बहिन की तरह हो जावें।

* * * *

जो वस्तु आपके देश की उन्नति में बाधा पहुँचाती हो, अथवा जिसके सेवन से आपके धर्म को आघात लगता हो, आपकी कुलमर्यादा भङ्ग होती हो, वह वस्तु अगर मुफ्त में भी मिल रही हो तो भी अगर आप विवेकवान् हैं तो उसे स्वीकार नहीं कर सकते। कौन बुद्धिमान् बिना पैसे मिलने के कारण विष खाने को तैयार होगा?

* * * *

प्रभु से प्रार्थना करो — 'हे दीनबन्धु! बिना काम किये हराम का खाने का विचार तक मेरे मन में न आवे। अधिक काम करके थोड़ा लेने की ही मेरी भावना बनी रहे।'

भाद्रपद कृष्णा ७

जिसे पराया मान रक्खा है, उसके प्रति आत्मीयता की भावना स्थापित करने की साधना को ही विवाह कहना चाहिए। विवाह के द्वारा आत्मीयता का संकीर्ण दायरा क्रमशः बढ़ता जाता है और बढ़ते-बढ़ते वह जितना बढ़ जाय उतनी ही मात्रा में विवाह की सार्थकता है। आत्मीयता की भावना को बढ़ाने के लिए शास्त्र में अनेक प्रकार के विधिविधान पाये जाते हैं। विवाह भी उन्हीं में से एक है। यह एक कोमल विधान है, जिसका अनुसरण करने में अधिक कठिनाई नहीं होती। यह बात दूसरी है कि किसी को विवाह के इस उज्ज्वल उद्देश्य का पता ही न हो और बहुत लोग विवाह करके भी इस उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर ध्यान ही न देते हों, फिर भी विवाहित जीवन की सफलता इसी में है कि पति और पत्नी आत्मीयता के क्षेत्र को विशाल से विशालतर बनाते जाएँ और अंत में प्राणीमात्र पर उसे फैला दें—विश्वमैत्री के योग्य बन जाएँ।

* * * *

बढ़िया खाना और पहिनना एवं जीभ का गुलाम बन जाना पुण्यशाली का लक्षण नहीं है। पुण्यवान् बनने के लिए जीभ पर अंकुश रखना पड़ता है।

भाद्रपद कृष्णा ८

झरना मनुष्य को अनोखा पाठ सिखलाता है। वह अनवरत गति से अनन्त सागर में मिल जाने के लिए बहता रहता है। इसी प्रकार मनुष्य भी अगर अनन्त परमात्मा में मिलने के लिए निरन्तर गतिशील रहे तो कृतकृत्य हो जाय। झरना हमें सिखलाता है कि निरन्तर प्रगति करना ही जीवन का चिह्न है और जड़ता मृत्यु की निशानी है।

* * * *

लोग सवेरे दान करके शाम को दान का फल प्राप्त करना चाहते हैं। मगर फल के लिए अधीर हो उठने से पूरा और वास्तविक फल मिलता ही नहीं है। फल की कामना फलप्राप्ति में बड़ी भारी बाधा है।

* * * *

वे गृहस्थ धन्य हैं जिनके हृदय में दया का वास रहता है और दुखी को देखकर अनुकम्पा उत्पन्न होती है। जो यह समझते हैं कि मैं यहाँ केवल उपकार करने के लिए आया हूँ। मेरा घर तो स्वर्ग में है।

भाद्रपद कृष्णा ६

स्त्री की शक्ति साधारण नहीं होती। लोग 'सीता-राम' कहते हैं, 'राम-सीता' नहीं कहते। इसी प्रकार 'राधा-कृष्ण' कहने में पहले राधा और फिर कृष्ण का नाम लिया जाता है। सीता और राधा स्त्रियाँ ही थीं। तारा जैसी रानी की बदौलत हरिश्चन्द्र का नाम आज भी घर-घर में प्रसिद्ध है। इन शक्तियों की सहायता से ही उन लोगों ने अलौकिक कार्य कर दिखलाये हैं। जैसे शरीर का आधा भाग बेकार हो जाने से सारा ही शरीर बेकार हो जाता है, वैसे ही नारी-शक्ति के अभाव में नर की शक्ति पूरा काम नहीं करती।

* * * *

जब तुम किसी को कुछ दो तो उसकी आबरू लेकर मत दो। ऐसा देना ही सच्चा देना है।

* * * *

आप यदि दृढ़ बन जावें कि हमारे सामने भय नहीं आ सकता, मैं निर्भय हूँ, मेरा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, तो वास्तव में ही कोई भूत-पिशाच आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

भाद्रपद कृष्णा १०

जिसके दिल में दया का वास है, वही पुण्यवान् है। जो आपापोपी हैं, आप बढ़िया खाते-पीते, पहिनते-ओढ़ते हैं, लेकिन पास-पड़ौस के दुखियों की ओर दृष्टि भी नहीं करते, उन्हें पुण्यवान् कैसे कहा जा सकता है?

* * * *

नैसर्गिक गुण के सामने उपदेश की कोई बिसात नहीं। नैसर्गिक गुण के होने पर मनुष्य की भावना जितनी ऊँची होती है, उपदेश से उतनी ऊँची नहीं हो सकती।

* * * *

आज अमीरी का चिह्न यह है कि इधर का लोटा उधर न रक्खा जाय। ऐसे कर्त्तव्य-कायर अमीर अपने आपको संसार की शोभा समझते हैं और दिन-रात कठोर परिश्रम करने वाले कर्त्तव्यपरायण ग्रामीणों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। मगर यह अमीर नागरिक एक दिन के लिए ही यह प्रतिज्ञा कर देखें कि वे ग्रामीणों के हाथ से बनी अथवा उनके परिश्रम से पैदा हुई किसी भी वस्तु का उपयोग न करेंगे! उन्हें पता चल जायगा कि उनकी अमीरी की नींव कितनी मजबूत है!

भाद्रपद कृष्णा ११

संसार की विलासवर्द्धक वस्तुएँ ही विषयवासना को उत्पन्न करती हैं। यह सब जीवन को अपवित्र बनाने वाली हैं। प्रभो! मुझे ऐसी वस्तुओं से बचाना। मेरा जीवन तेरे ही चरणों में समर्पित है।

*   *   *   *

बाह्य सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर भी जिसके पास सद्विचार और धर्मभावना की आन्तरिक समृद्धि बची हुई है, वह सौभाग्यशाली है। इससे विरुद्ध आन्तारिक समृद्धि के न होने पर बाह्य सम्पत्ति का होना दुर्भाग्य का लक्षण है।

*   *   *   *

नगर की सड़ाँद से भरी हुई गलियों में दुर्गन्ध पैदा होती है, अरुचि पैदा होती है, नाना प्रकार की हैज़ा-प्लेग आदि बीमारियाँ पैदा होती हैं, मगर अन्न नहीं पैदा हो सकता। उन गलियों में विषाक्त वायु का संचार होता है, प्राणवायु का प्रवेश भी नहीं होता और ग्रामों में? ग्रामों में प्राणों का अनवरत संचार है, प्रकृति के सौन्दर्य की अनोखी बहार है और अन्न के अक्षय भण्डार हैं।

भाद्रपद कृष्णा १२

बुद्धि की दौड़ आत्मा की परछाईं तक नहीं पा सकती। आत्मा की शोध बुद्धि की सामर्थ्य से परे है। यही नहीं, बल्कि बुद्धि के द्वारा आत्मा का कल्याण भी होना सम्भव नहीं है।

* * * *

संग्रहपरायणता दूसरे सब पापों का मूल है।

* * * *

आत्मा कान का भी कान है, आंख की भी आँख है, रस का भी रस है। इस प्रकार इन्द्रियों को शक्ति देने वाला, इंद्रियों का अधिपति आत्मा है। आत्मा अमर है। अमर होने पर भी उसके अस्तित्व पर विश्वास नहीं किया जाता, यही भयङ्कर भूल है। इसी भूल के कारण ज्ञानियों को चिन्ता होती है। अगर कोई पुरुष हीरे को पत्थर का टुकड़ा कहे तो जौहरी को चिन्ता होना स्वाभाविक है।

* * * *

आत्मबल ही एकमात्र सच्चा बल है। जिसे आत्मबल की लब्धि हो गई है उसे अन्य बल की आवश्यकता नहीं रहती।

भाद्रपद कृष्णा १३

जो मनुष्य घड़ी को देखकर उसके कारीगर को नहीं पहचानता वह मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जो शरीर को धारण करके इसमें विराजमान आत्मा को नहीं पहचानता और न पहचानने का प्रयत्न करता है उसकी समस्त विद्या अविद्या है। उसके सब काम खटपट रूप हैं।

* * * *

जिस आत्मा के सहारे संसार का व्यवहार चल रहा है, उस आत्मा को पहचानना ही उत्तम अर्थ है। यह जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। जीवन की चरम सफलता इसी में है। जो जो इन्द्रियों के मोह में पड़ जाता है वह आत्मा को भूल जाता है। वह उत्तम अर्थ को नष्ट करता है।

* * * *

अगर मुझसे कोई प्रश्न करे कि परमात्मा को प्राप्त करने का सरल मार्ग क्या है? तो मैं कहूँगा—परमात्मा की प्राप्ति का सरल मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। अनन्य भाव से परमात्मा की प्रार्थना या भक्ति करने से परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

भाद्रपद कृष्णा १४

आत्मा की मौजूदगी में तो यह शरीर सौ वर्ष टिका रह सकता है, पर आत्मा के अभाव में कुछ दिनों तक भी नहीं टिकता। यह शरीर जिसका कार्य है, उस कारणभूत आत्मा को देखो और यह मानो कि सूक्ष्म और स्थूल दोनों की आवश्यकता है, पर हमारा ध्येय स्थूल की नहीं वरन् सूक्ष्म की उपलब्धि करना ही है। क्योंकि स्थूल के आधार पर सूक्ष्म नहीं किन्तु सूक्ष्म के आधार पर स्थूल है। इस प्रकार अध्यात्मवाद को समझना कुछ कठिन नहीं है।

* * * *

मोटर, वायुयान आदि साधनों ने तुम्हारी शक्ति का अपहरण किया है। तुम रेडियो सुनना पसन्द करते हो, पर उसे सुनते-सुनते अपने स्वर को भी भूल गये हो।

* * * *

जहाँ धर्म के नाम पर खून-खराबी हो, वहाँ यही समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर ढोंग प्रचलित है। सच्चा धर्म अहिंसा और सत्य आदि है। अहिंसा के कारण कहीं खून-खच्चर नहीं हो सकता।

भाद्रपद कृष्णा ३०

जड़ साइंस के चकाचौंध में पड़कर साइन्स के निर्माता—आत्मा—को नहीं भूल जाना चाहिए। अगर तुम साइन्स के प्रति जिज्ञासा रखते हो तो साइन्स के निर्माता के प्रति भी अधिक नहीं तो उतनी ही जिज्ञासा अवश्य रक्खो। साइन्स को पहचानते हो तो आत्मा को भी पहचानने का प्रयत्न करो।

*   *   *   *

परमात्मा अनन्त सूर्यों से भी अधिक तेजस्वी है। बड़े से बड़ा पापी परमात्मा को बुलाता है तब भी वह उसके हृदय में वास करने के लिए आ जाता है। उसका विरुद ही ऐसा है।

*   *   *   *

इन्द्रियानन्द स्वाभाविक सुख का विकार है। यह सुख परावलम्बी है। प्रथम तो वह संसार की भोग्य वस्तुओं पर अवलम्बित है और दूसरे इन्द्रियों पर आश्रित है। इन दोनों का संयोग मिल जाने पर अगर सुख का उदय होता है तो भी वह क्षणिक है। अल्पकाल तक ही ठहरने वाला सुख भी परिमित है और विघ्न-बाधाओं से व्याप्त है।

भाद्रपद शुक्ला १

ईश्वर के बल से शत्रु का संहार करने पर न वैरी रह जाता है न वैर ही रह पाता है।

*   *   *   *

जब तक आप अपने बल पर विश्वास रखकर अहङ्कार में डूबे रहेंगे, तब तक ईश्वरीय बल नसीब न होगा। इसी प्रकार अन्य भौतिक बलों पर भरोसा करने से भी वह आध्यात्मिक ईश्वरीय बल आप न पा सकेंगे। अहङ्कार का सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग करके परमात्मा के चरणों में जाने से उस बल की प्राप्ति होती है।

*   *   *   *

जो तुम्हारा है वह कभी तुमसे विलग नहीं हो सकता। जो वस्तु तुमसे विलग हो जाती या हो सकती है, वह तुम्हारी नहीं है। पर-पदार्थों के साथ आत्मीयता का भाव स्थापित करना महान् भ्रम है। इस भ्रमपूर्ण आत्मीयता के कारण जगत् अनेक कष्टों से पीड़ित है। अगर 'मैं' और 'मेरी' की मिथ्या धारणा मिट जाय तो जीवन में एक प्रकार की अलौकिक लघुता, निरुपम निस्पृहता और दिव्य शांति का उदय होगा।

भाद्रपद शुक्ला २

बड़े-बड़े शूरवीर योद्धा, जो समुद्र के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करते हैं, विशाल जल-राशि को चीरकर अपना मार्ग बनाते हैं और देवों की भाँति आकाश में विहार करते हैं, जिनके पराक्रम से संसार थर्राता है, वे भी मृत्यु को समीप आता देखकर कातर बन जाते हैं, दीन हो जाते हैं। लेकिन जो महात्मा आत्मबली होते हैं वे मृत्यु का आलिंगन करते समय रंचमात्र भी खेद नहीं करते। मृत्यु उनके लिए सघन अन्धकार नहीं है, वरन् स्वर्ग-अपवर्ग की ओर ले जाने वाले देवदूत के समान प्रतीत होती है। इसका कारण क्या है? इसका एकमात्र कारण आत्मबल है।

* * * *

जो अपने आपको द्रष्टा और संसार को नाटकरूप देखता है, सारी शक्तियाँ उसके चरणों की सेवा करने को तैयार रहती हैं।

* * * *

जिस साइंस ने आज संसार को कुछ का कुछ बना दिया है उसके मूल में आत्मा की ही शक्ति है। आत्मा न हो तो संसार का काम एक क्षण भी नहीं चल सकता।

भाद्रपद शुक्ला ३

पर्युषण का अर्थ है—आत्मानुभव में लीन होना, आत्माभिमुख होकर रहना, आत्मा के शुद्ध स्वभाव का चिन्तन करना, आत्मोत्कर्ष की तैयारी करना, आत्मोन्नति के साधनों का संग्रह करना, आत्मनिरीक्षण करना; आत्मा की शक्ति को समझना, आत्मा की वर्त्तमानकालीन दुर्बलता को दूर करना, बाह्य पदार्थों से नाता तोड़ना, आत्मा से भिन्न परपदार्थों पर निर्भर न रहना।

* * * *

उपवास वह है जिसमें कषायों का, विषयों का और आहार का त्याग किया जाता है। जहाँ इन सबका त्याग न हो—सिर्फ आहार त्यागा जाय और विषय-कषाय का त्याग न किया जाय वह लंघन है—उपवास नहीं।

* * * *

जो अनुष्ठान किया जाय वह आत्मस्पर्शी होना चाहिए—मात्र शरीरस्पर्शी नहीं। जो क्रियाकाण्ड सिर्फ शरीरशोषण करता है, आत्मपोषण नहीं करता अर्थात् आत्मिक गुणों के विकास में जरा भी सहायक नहीं होता, वह आध्यात्मिक दृष्टि से निष्प्रयोजन है।

भाद्रपद शुक्ला ४

भाद्रपद मास में जब समस्त पृथ्वीतल हराभरा और प्रसादपूर्ण बन जाता है तो मयूर अपनी भाषा में और मेंढ़क अपनी भाषा में मानो परमात्मा की स्तुति करने लगते हैं। उस समय पर्युषण पर्व हमें चेतावनी देता है—ऐ मनुष्य! क्या तू इन तिर्यंचों से भी गया-बीता है कि सार्थक और व्यक्त भाषा पाकर भी तू प्रभु की बिरुदावली का बखान नहीं करता? और उच्च स्वर से शास्त्रों के पवित्र पाठ का उच्चारण नहीं करता?

*   *   *   *

इन दृश्यमान बाह्य पदार्थों में ही विश्व की परिसमाप्ति नहीं हो जाती। इन भौतिक पदार्थों से परे एक वस्तु और भी विश्व में विद्यमान है और वह आत्मा है। वह आत्मा शाश्वत है—सनातन है।

*   *   *   *

पर्युषण पर्व शत्रु को भी मित्र बनाने का आदर्श उपस्थित करता है। चाहे आपका शत्रु अपनी ओर से शत्रुता का त्याग करे या नहीं, मगर आपको अपनी ओर से शत्रुता का त्याग कर देना चाहिए।

भाद्रपद शुक्ला ५

'वैर भूल जाओ। परस्पर प्रेम का झरना बहाओ, जिससे तुम्हारा और दूसरे का संताप मिट जाय, शान्ति प्राप्त हो और अपूर्व आनन्द का प्रसार हो। लेन-देन में, बोल-चाल में, किसी से कोई झगड़ा हुआ हो, मनमुटाव हुआ हो, कलह हुआ हो तो उसे भुला दो। किसी प्रकार की कलुषता हृदय में मत रहने दो। चित्त के विकारों की होली जलाओ, आत्मिक प्रकाश की दीपमालिका जगाओ, प्राणीमात्र की रक्षा के बन्धन में बँध जाओ तो इस महामहिमामय पर्व (पर्युषण) में सभी पर्वों का समावेश हो जाएगा।

*

संवत्सरी पर्व आत्मा का निर्मल बनाने का अपूर्व अवसर है। छोटी-छोटी बातों में इस सुअवसर को भूल नहीं जाना चाहिए।

* * * *

दान देकर ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है। जो लोग अपने दान का ढिंढोरा पीटते हैं वे दान के असली फल से वंचित हो जाते हैं। अतएव न तो दान की प्रसिद्धि चाहो और न दान देकर अभिमान करो।

भाद्रपद शुक्ला ६

अगर मनुष्य के जीवन की धारा, निर्झर की 'जीवन'-धारा के समान सदा शान्त, निरन्तर अग्रगामी, मार्ग में आने वाली चट्टानों से भी टकरा कर कभी न रुकने वाली, विश्व को संगीत के माधुर्य से पूरित कर देने वाली और निरपेक्षता से बहने वाली बन जाय तो क्या कहना है !

*   *   *   *

कई लोग समझते हैं कि बाजार से सीधा लेकर खाने में पाप नहीं होता, मगर उन्हें पता नहीं है कि बाजारू चीज़ें किस प्रकार भ्रष्ट करने वाली हैं ! स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वे त्याज्य हैं और धर्म की दृष्टि से भी । उन धर्मभ्रष्ट करने वाली चीज़ों को खाकर कोई अपनी क्रिया कैसे शुद्ध रख सकता है !

*   *   *   *

गरीब की आत्मा में शुद्ध भावना की जो समृद्धि होती है, वह अमीर की आत्मा में शायद ही कहीं पाई जाती है । प्रायः अमीर की आत्मा दरिद्र होती है और दरिद्र की आत्मा अमीर होती है ।

भाद्रपद शुक्ला ७

धर्मभावना मनुष्य को घबराने से रोकती है और कठोर से कठोर प्रसंग पर भी शान्त-चित्त रहने की प्रेरणा करती है। धर्ममय भावना का आन्तरिक आदेश प्रत्येक परिस्थिति को समभाव से स्वीकार करने की क्षमता प्रदान करता है।

* * * *

चिन्ता किसी भी मुसीबत का इलाज नहीं। वह स्वयं एक बड़ी मुसीबत है जो सैकड़ों दूसरी मुसीबतों को घेर कर ले आती है। चिन्ता करने से लाभ क्या होता है? वह उलटा प्राणों पर सङ्कट ला देता है।

* * * *

पुण्य करुणा में है। जो पुण्यवान् होगा वही करुणावान् होगा। वह दीन-दुखियों से प्रेम करेगा। दरिद्री को देखकर वह नफ़रत नहीं करेगा।

* * * *

जिसके माता-पिता निष्ठा वाले होते हैं, वह बालक भी वैसे ही निष्ठावान् होते हैं।

भाद्रपद शुक्ला ८

हे भद्र पुरुषो ! तुम जिस प्रकार सांसारिक व्यवहार को महत्व देते हो, उसी प्रकार आध्यात्मिक और तात्विक बात को भी महत्व दो। तुम व्यवहारिक कार्यों में जैसा कौशल प्रदर्शित करते हो वही आध्यात्मिक कार्यों में क्यों नहीं दिखलाते ?

*　　*　　*　　*

प्रार्थना में आत्म-समर्पण की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। प्रार्थना करने वाला अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाता है। वह परमात्मा के साथ अपना तादात्म्य-सा सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वस्तुतः आत्मोत्सर्ग के बिना सच्ची प्रार्थना नहीं हो सकती।

*　　*　　*　　*

ईश्वर का ध्यान करने से आत्मा स्वयं ईश्वर बन जाता है। पर जब तक ईश्वरत्व की अनुभूति नहीं होती तब तक प्राणियों को ही ईश्वर के स्थान पर आरोपित कर लो। संसार के प्राणियों को आत्मा के समान समझने से दृष्टि ऐसी निर्मल बन जायगी कि ईश्वर को भी देखने लगोगे और अन्त में स्वयं ईश्वर बन जाओगे।

भाद्रपद शुक्ला ६

पतिव्रता स्त्री को अपने पति से मिलने की जैसी तड़फ होती है, उससे कहीं अधिक गहरी तड़फ आत्मा को परमात्मा से मिलने की होनी चाहिए।

*   *   *   *

हे भाइयो! मेरा कहना मानते हो तो मैं कहता हूँ कि दूसरे सब काम छोड़कर परमात्मा का भजन करो। इसमें तनिक भी विलम्ब न करो। तुम्हारी इच्छा आत्मकल्याण करने की है और यह अवसर भी अनुकूल मिल गया है। कल्याण के साधन भी उपलब्ध हैं। फिर विलम्ब किस लिए करते हो? कौन जानता है यह अनुकूल दशा कब तक रहेगी?

*   *   *   *

फल से बचने की कामना करना व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त कर्म करके उसके फल से बचने की कामना करना एक प्रकार की दीनता और कायरता है। अतएव नवीन कर्मों से बचने के लिए और पूर्वकृत कर्मों का समभाव के साथ फल भोगने की क्षमता प्राप्त करने के लिए ही भगवान् का स्मरण करना चाहिए।

भाद्रपद शुक्ला १०

अनुभूति-शून्य लोग परमात्मा को तो पाते नहीं, परमात्मा का नाम-मात्र पाते हैं। परमात्मा परम प्रकर्ष को प्राप्त अनन्त गुणों का अखण्ड समूह है। वह एक भावमय सत्ता है, पर बहिर्दृष्टि लोग उसे शब्दमय मान बैठते हैं। अनन्त गुणमय होने के कारण लोग परमात्मा के खण्ड-खण्ड करने पर उतारू हो जाते हैं। उनके लिए परमात्मा से बढ़कर परमात्मा का नाम है। अतएव वे नाम को पकड़ बैठते हैं। नाम के आवरण में छिपी हुई विराट और व्यापक सत्ता को वे नहीं पहचानते। जिन्हें अन्तर्दृष्टि का लाभ हो गया है और जो शब्दों के व्यूह को चीरकर भीतरी मर्म तक पहुँचने का सामर्थ्य रखते हैं, वे नाम को गौण और वस्तु को प्रधान मानते हैं। अतएव हमारे हृदय में यह दिव्य भावना आनी चाहिए कि परमात्मा सबका है। उसे क्लेश-कदाग्रह का साधन बनाकर आपस में लड़-मरना नहीं चाहिए।

*   *   *   *

अहिंसा का विधि-अर्थ है—मैत्री, बन्धुता, सर्वभूत-प्रेम। जिसने मैत्री या बन्धुता की भावना जाग्रत नहीं की है, उसके हृदय में अहिंसा का सर्वांगीण विकास नहीं हुआ है।

भाद्रपद शुक्ला ११

धर्म के नाम पर प्रकट किये जाने वाले भूतकालीन और वर्त्तमानकालीन अत्याचार और जुल्म धर्मभ्रम या धर्मान्धता के कारण ही हुए और हो रहे हैं। धर्म तो सदा सर्वदा सर्वतोभद्र ही है। जहाँ धर्म है वहाँ अन्याय, अत्याचार नहीं फटक सकते।

*   *   *   *

जो लोग धर्म की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते, उन्हें भी जीवन में धर्म का आश्रय लेना ही पड़ता है, क्योंकि धर्म का आश्रय लिए बिना जीवन-व्यवहार निभ ही नहीं सकता है।

*   *   *   *

हिंसा के सामने दया क्या कर लेगी? इसका उत्तर यह है कि दया हिंसा पर विजय प्राप्त करेगी। जिन्होंने अहिंसा की उपलब्धि की है, जिन्हें अहिंसा पर अचल आस्था है, वह जानते हैं कि अहिंसा में अद्भुत और आश्चर्यजनक शक्ति विद्यमान है। अहिंसा के बल के सामने हिंसा गल कर पानी-पानी हो जाती है।

भाद्रपद शुक्ला १२

जो कायर-अहिंसा को लजावेगा, वह अहिंसक बन नहीं सकता। कायर अपनी कायरता को छिपाने के लिए अहिंसक होने का ढोंग रच सकता है, वह अपने आपको अहिंसक कहे तो कौन उसकी जीभ पकड़ सकता है, पर वास्तव में वह सच्चा अहिंसक नहीं है। यों तो सच्चा अहिंसावादी एक चिउंटी के भी व्यर्थ प्राण हरण करने में थर्रा उठेगा, क्योंकि वह संकल्पजा हिंसा है। वह इसे महान् पातक समझता है। पर जब नीति या धर्म खतरे में होगा, न्याय का तकाज़ा होगा और संग्राम में कूदना अनिवार्य हो जायगा तब वह हजारों मनुष्यों के सिर उतार लेने में भी किंचिन्मात्र खेद प्रकट न करेगा। हाँ, वह इस बात का अवश्य पूर्ण ध्यान रक्खेगा कि संग्राम मेरी ओर से सङ्कल्परूप न हो, वरन् आरम्भरूप हो।

* * * *

जिसके शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से आत्म-तेज फूट पड़ता हो उसे अलंकारों की अपेक्षा नहीं रहती। सच पूछो तो सुन्दरता-वर्धन के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले ऊपरी पदार्थ आन्तारिक तेज की दरिद्रता को सूचित करते हैं और सौन्दर्य-विषयक सम्यग्ज्ञान के अभाव के परिचायक हैं।

भाद्रपद शुक्ला १३

सत्य-विचार, सत्य-भाषण और सत्य-व्यवहार करने वाला मनुष्य ही उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है। जिस मनुष्य में सत्य नहीं है, समझना चाहिए कि उसकी देह जीवरहित काष्ठ पाषाण की तरह, धर्म के लिए अनुपयोगी है।

*　　　*

भारतवर्ष ने अहिंसा और सत्य का जो झण्डा गाड़ा है, उस झण्डे की शरण ग्रहण करने से ही संसार की रक्षा होगी। अन्य देश जहाँ तोपों और तलवारों की शिक्षा देते हैं वहाँ भारतवर्ष अहिंसा का पाठ सिखाता है। भारत ही अहिंसा का पाठ सिखा सकता है, किसी दूसरे देश की संस्कृति में यह चीज़ ही नज़र नहीं आती।

तुम्हारे पास धन नहीं है, तो चिन्ता करने की क्या बात है? धन से बढ़कर विद्या, बुद्धि, बल आदि अनेक वस्तुएँ हैं। तुम उनका दान करो। धन-दान से विद्यादान क्या कम प्रशस्त है? नहीं। तुम्हारे पास जो कुछ अपना कहने को है, बस, उसी का उत्सर्ग कर दो।

भाद्रपद शुक्ला १४

सब मतावलम्बी यदि गम्भीरतापूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से विचार करें तो मालूम होगा कि धर्म की नींव 'सत्य' के ऊपर ही है और वह सत्य सबके लिए एक है। उस सत्य को समझ लेने पर वे ही लोग, जो आपस में धर्म के नाम पर द्वेष रखते हैं, द्वेषरहित होकर एक दूसरे से गला मिलाकर भाई की तरह प्रेमपूर्वक रह सकते हैं।

*   *   *   *

तुम समझते हो हमने तिजोरी में धन को कैद कर लिया है। पर धन समझता है कि हमने इतने बड़े धनी को अपना पहरेदार मुकर्रर कर लिया है।

*   *   *   *

जिस राष्ट्रीयता में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का सहायक और पूरक रहता है, जिसमें प्रतिस्पर्धा के बदले पारस्परिक सहानुभूति की प्रधानता होती है, जहाँ विश्व-कल्याण के प्रयोजन से राष्ट्रीय-नीति का निर्धारण होता है, वही शुद्ध राष्ट्रीयता है। जैसे शरीर का प्रत्येक अङ्ग दूसरे अङ्ग का पोषक है उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र विश्व-शरीर का पोषक होना चाहिए।

भाद्रपद शुक्ला १५

असत्य साहसशील नहीं होता। वह छिपना जानता है, बचना चाहता है। क्योंकि असत्य में स्वयं बल नहीं है। निर्बल का आश्रय लेकर कोई कितना निर्भय हो सकता है! सत्य अपने आप में बलशाली है। जो सत्य को अपना अवलम्ब बनाता है—सत्य के चरणों में अपने प्राणों को सौंप देता है, उसमें सत्य का बल आ जाता है और उस बल से वह इतना सबल बन जाता है कि विघ्न और बाधाएँ उसका पथ रोकने में असमर्थ सिद्ध होती हैं। वह निर्भय सिंह की भाँति निस्संकोच होकर अपने मार्ग पर अग्रसर होता चला जाता है।

* * * *

तुम अपनी कृपणता के कारण धन का व्यय नहीं कर सकते पर धन तुम्हारे प्राणों का भी व्यय कर सकता है।

* * * *

तुम धन को चाहे जितना प्रेम करो, प्राणों से भी अधिक उसकी रक्षा करो, उसके लिए भले ही जान दे दो, लेकिन धन अन्त में तुम्हारा नहीं रहेगा—नहीं रहेगा। वह दूसरों का बन जायगा।

आश्विन कृष्णा १

संसार के सभी मनुष्य समान होकर रहें, इस प्रकार का साम्यवाद कभी समस्त संसार में फैल सकता है, लेकिन उस समानता में जब तक बन्धुता न होगी तब तक उसकी नींव बालू पर खड़ी हुई ही समझना चाहिए। वायु के एक झकोरे से साम्यवाद की ही नींव हिल जायगी और उसके आधार पर निर्मित की हुई इमारत धूल में मिल जायगी। साम्य के सिद्धान्त को अगर सजीव बनाया जा सकता है तो उसमें बन्धुता की भावना का सम्मिश्रण करके ही।

*　　*　　*　　*

हे दानी! तू दान के बदले कीर्ति और प्रतिष्ठा खरीदने का विचार मत कर। अगर तेरे अन्तःकरण में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है तो समझ ले कि तेरा दान, दान नहीं है; व्यापार है।

*　　*　　*　　*

सत्य से पूत संकल्प के प्रभाव से विष भी अमृत बन जाता है, अग्नि भी शीतल हो जाता है। सत्सङ्कल्प में ऐसा महान् प्रभाव और अद्भुत क्षमता है।

आश्विन कृष्णा २

तप एक प्रकार की अग्नि है जिसमें समस्त अपवित्रता, सम्पूर्ण कलुष एवं समग्र अशान्ति भस्म हो जाती है। तपस्या की अग्नि में तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भाँति तेज से विराजित हो जाती है।

* * * *

गाली देने वाला अपनी जिह्वा का दुरुपयोग करता है, पाप का उपार्जन करता है। वह मानसिक दुर्बलता का शिकार है, अतएव करुणा का पात्र है। जो करुणा का पात्र है उस पर क्रोध करना विवेकशीलता नहीं है।

सौ निरर्थक बातें करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है।

* * * *

समाज में शिक्षक का स्थान बहुत ऊँचा है। शरीर में मस्तिष्क का जो स्थान है, वही स्थान समाज में शिक्षक का है। शिक्षक विधाता है, निर्माता है।

आश्विन कृष्णा ३

प्रकृति के निगूढ़तर रहस्य और सूक्ष्मतम अध्यात्मतत्त्व बुद्धि या तर्क के विषय नहीं हैं। तर्क उनके निकट भी नहीं पहुँच पाता। ऐसी स्थिति में बुद्धि या तर्क के भरोसे बैठा रहने वाला सम्यग्ज्ञान से वंचित रहता है।

* * * *

ज्ञानरहित क्रिया बहुत बार हानिकारक सिद्ध होती है। इसी प्रकार क्रियारहित ज्ञान तोतारटन्त मात्र है। एक आदमी ने तोते को सिखाया कि—'बिल्ली आवे तो उससे बचना चाहिए।' तोते ने यह शब्द रट लिए रटता रहा। एक बार बिल्ली आई और उसने तोते को अपने निर्दय पंजे में पकड़ लिया। उस समय भी तोता यही रटता रहा—'बिल्ली आवे तो उससे बचना चाहिए।' लोग कहने लगे—मूर्ख तोता! अब कब बिल्ली आयगी और कब तू बचेगा!

* * * *

असली सौन्दर्य आत्मा की वस्तु है। आत्मिक सौन्दर्य की सुनहरी किरणें जो बाहर प्रस्फुटित होती हैं, उन्हीं से शरीर की सुन्दरता बढ़ती है।

आश्विन कृष्णा ४

ज्ञानी पुरुष मानते हैं—'समस्त दुःख समाप्त हो जाते हैं पर मैं कभी समाप्त नहीं हो सकता।'

*　　*　　*　　*

तुम ऐसी जगह खड़े हो, जहां से दो मार्ग फटते हैं। तुम जिधर चाहो, जा सकते हो। एक संसार का मार्ग है; दूसरा मुक्ति का। एक बन्धन का, दूसरा स्वाधीनता का।

*　　*　　*　　*

साधारण जनता को अतिशय भीषण प्रतीत होने वाली घटना को भी मुनिराज अपनी संवेदना के सांचे में ढालकर सुखरूप परिणत कर लेते हैं। यही कारण है कि गजसुकुमार मुनि मस्तक जलने पर भी दुःख की अनुभूति से बचे रहे।

*　　*　　*　　*

भाइयो, अगर जीवन में किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करना है तो पहले उसका स्वरूप, उसके साधन और उसके मार्ग-को समीचीन रूप से समझो और फिर तदनुकूल क्रिया करो। ऐसा किये बिना जीवन सफल नहीं हो सकता'।'

आश्विन कृष्णा ५

संसार के पदार्थ अलग-अलग दृष्टियों से देखे जाने पर अलग-अलग प्रकार के दिखाई देने लगते हैं। हाड़-पींजरे को देखकर कोई उसे अपना भोजन समझता है, तो कोई उसे अपनी खोज का साधन मानता है। किसी कुत्ते के सामने अस्थिपंजर रख दिया जाय तो वह अपना भोजन समझकर खाने लगता है और अस्थि-पंजर किसी डॉक्टर के सामने रख दिया जाय तो वह शरीर-सम्बन्धी किसी खोज के लिए उसका उपयोग करता है। ज्ञानी और अज्ञानी के बीच भी इसी प्रकार का अन्तर है। अज्ञानी लोग हाड़-पींजरे का बाहरी रूप देखकर मोहित हो जाते हैं और ज्ञानी जन बाहर दिखाई देने वाले रूप के पीछे क्या छिपा है, इस प्रकार का विचार करके वैराग्य-लाभ करते हैं।

*

यह स्त्रियाँ जग-जननी का अवतार हैं। इन्हीं की कूख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष-समाज पर स्त्री-समाज का बड़ा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना; उनके प्रति अत्याचार करने में लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है

आश्विन कृष्णा ६

माथे पर अङ्गार रक्खे हों और मुनि तपस्या में लीन हों, यह कैसी असम्भव-सी कल्पना है। परन्तु यह असम्भावना, अपनी निर्बलता को प्रकट करती है। हमने शरीर और आत्मा के प्रति अभेद की कल्पना स्थिर कर ली है। हमारे अन्तःकरण में देहाध्यास प्रबल रूप से विद्यमान है। हम शरीर को ही आत्मा मान बैठे हैं। अतएव शरीर की वेदना को आत्मा की वेदना मानकर विकल हो जाते हैं। परन्तु जिन्होंने परमहंस की वृत्ति स्वीकार करके, स्व-पर भेदविज्ञान का आश्रय लेकर, अपनी आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक् कर लिया है—जो शरीर को भिन्न और आत्मा को भिन्न अनुभव करने लगते हैं, उन्हें इस प्रकार की शारीरिक वेदना तनिक भी विचलित नहीं कर सकती। वे सोचते हैं—शरीर के भस्म हो जाने पर भी मेरा क्या बिगड़ता है? मैं चिदानन्दमय हूँ, मुझे अग्नि का स्पर्श भी नहीं हो सकता।

*　　*　　*　　*

एक व्यक्ति जब तक अपने ही सुख को सुख मानता रहेगा जब तक उसमें दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानने की संवेदना जागृत न होगी, तब तक उसके जीवन का विकास नहीं हो सकता।

आश्विन कृष्णा ७

वास्तव में अखिल संसार सेवा के सहारे टिका हुआ है। संसार में जब सेवाभावना कम हो जाती है तब उत्पात होने लगता है और जब सेवाभावना का उत्कर्ष होता है तो संसार स्वर्ग बन जाता है।

* * * *

अगर आसुरी शक्ति को पराजित करना है तो दैवी शक्ति का विकास करो। जगत् के समस्त महान् पुरुष दैवी शक्ति का विकास करके-ही महान् बने हैं। दैवी शक्ति के विकास द्वारा आत्मा का कल्याण करना महाजनों का राजमार्ग है।

* * * *

सेवा आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाली शृङ्खला है।

* * * *

विपत्ति को सम्पत्ति के रूप में परिणत करने का एकमात्र उपाय यह है कि विपत्ति से घबड़ाना नहीं चाहिए। विपत्ति को आत्मकल्याण का श्रेष्ठ साधन समझकर, विपत्ति आने पर प्रसन्न रहना चाहिए।

आश्विन कृष्णा ८

बन्दर के शरीर में मांस को पचाने वाली आंतें नहीं हैं। इस कारण बन्दर कभी मांस नहीं खाता—फल पर वह टूट कर गिरता है। जरा विचार करो कि जो प्राणी-बन्दर सिर्फ मनुष्य की शक्ल का है, वह तो मांस नहीं खाता। वह अपनी आंतों को पहचानता है। पर मनुष्य कहलाने वाला प्राणी इतना विवेकहीन है कि वह मांस भक्षण कर लेता है।

*　　*　　*　　*

प्रकृति की पाठशाला में जो संस्कारमय बोध प्राप्त होता है वह कॉलेज या हाईस्कूल में नहीं मिल सकता। जो महापुरुष जगत् के कोलाहल से हटकर जङ्गल में रहकर प्रकृति से शिक्षा लेते हैं, वे धन्य हैं। उन्हीं से सभ्यता का निर्माण होता है। भारतीय संस्कृति नगरों में नहीं, वनों में ही उत्पन्न हुई और सुरक्षित रही है।

*　　*　　*　　*

भोग के कीड़े सिंह पैदा नहीं कर सकते। जिन्हें सचमुच सबल और वीर्यवान् सन्तान की कामना हो, उन्हें ब्रह्मचर्य का समुचित पालन करना चाहिए।

आश्विन कृष्णा ६

शराब पीने वालों को अपने हित-अहित का, भले-बुरे का तनिक भी भान नहीं रहता। न्याय-अन्याय और पाप-पुण्य के विचार शराब की बदबू में प्रवेश ही नहीं कर सकते। शराब पीने वालों के हाथ से हजारों खून हुए हैं। दुराचार और व्याभिचार तो उसका प्रत्यक्ष फल है। शराब में इतनी अधिक बुराइयाँ हैं कि कोई भी समझदार और विवेकशील पुरुष उनके विरुद्ध अपना मत नहीं दे सकता।

* * * *

जब देवता भी ब्रह्मचारी पुरुष के चरणों पर लोटते हैं तो मनुष्यों का कहना ही क्या है? ब्रह्मचर्य में ऐसी अलौकिक शक्ति होती है कि समस्त प्रकृति उसकी दासी बन जाती है, समस्त शक्तियाँ उसके हाथ का खिलौना बन जाती हैं, सिद्धियाँ उसकी अनुचरी हो जाती हैं और ऋद्धियाँ उसके पीछे-पीछे दौड़ती-फिरती हैं।

* * * *

गहना-कपड़ा नारी का सच्चा आभूषण नहीं है। नारी का श्रेष्ठ आभूषण शील है।

आश्विन कृष्णा १०

विरोध जहाँ दिखाई पड़ता हो, वहाँ समन्वय-बुद्धि का अभाव समझना चाहिए। विरोध के विष का मन्थन करके, उसमें से अमृत निकालने की कला हमें सीखनी होगी। इस कला के अभाव में ही अनेक विरोधाभास विरोध बनकर हमारी बुद्धि को विकृत एवं भ्रान्त बना देते हैं। संसार के इतने मत-मतान्तर किस बुनियाद पर खड़े हैं? इनकी बुनियाद है सिर्फ समन्वय-बुद्धि का अभाव। अगर हम विभिन्न दृष्टिकोणों में से सत्य का स्वरूप देखने की क्षमता प्राप्त कर लें तो जगत् के एकान्तवाद तत्काल विलीन हो जाएँगे और वह विलीन होकर भी नष्ट नहीं हो जाएँगे वरन् एक अखण्ड और विराट सत्य को साकार बना जाएँगे। नदियाँ जब असीम सागर में विलीन होती हैं तो वह नष्ट नहीं हो जातीं, वरन् सागर का रूप धारण कर लेती हैं। इसी प्रकार एक-दूसरे से अलग-अलग प्रतीत होने वाले दृष्टिकोण मिलकर विराट सत्य का निर्माण करते हैं।

* * * *

मीठे वचनों की कोई कमी तो है नहीं। फिर कठोर और कटुकर वचन कहने से क्या लाभ है?

आश्विन कृष्णा ११

मनुष्यों के लिए अगर मृग निरर्थक है तो मृगों के लिए क्या मनुष्य निरर्थक नहीं है ? निरर्थकता और सार्थकता की कसौटी मनुष्य का स्वार्थ होना उचित नहीं है। मानवीय स्वार्थ की कसौटी पर किसी की निरर्थकता का निर्णय नहीं किया जा सकता। मृग प्रकृति की शोभा हैं। उन्हें जीवित रहने का उतना ही अधिकार है जितना मनुष्य को। क्या समग्र विश्व का पट्टा किसी ने मनुष्य-जाति के नाम लिख दिया ? अगर नहीं तो जङ्गली पशुओं को सुख-चैन से क्यों न रहने दिया जाय।

* * * *

पति और पत्नी का दर्जा बराबर है तथापि दोनों में जो अधिक बुद्धिमान् हो उसकी आज्ञा कम बुद्धिमान् को मानना चाहिए। ऐसा करने से ही गृहस्थी में सुख-शान्ति कायम रह सकती है।

* * * *

पति अगर स्वामी है तो पत्नी क्या स्वामिनी नहीं है ? पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नहीं कहलाती ?

आश्विन कृष्णा १२

परिवर्त्तन चाहे किसी को इष्ट हो, चाहे अनिष्ट हो, शुभ हो या अशुभ हो, वह होता ही है। संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती और सच तो यह है कि परिवर्त्तन में ही गति है, प्रगति है, विकास है, सिद्धि है। जहाँ परिवर्त्तन नहीं वहाँ प्रगति को अवकाश भी नहीं है। वहाँ एकान्त जड़ता है, स्थिरता है, शून्यता है। अतएव परिवर्त्तन जीवन है और स्थिरता मृत्यु है। परिवर्त्तन के आधार पर ही विश्व का अस्तित्व है।

* * * *

सत्पुरुषों की वरिता रक्षा में है, प्राणियों के संहार में नहीं।

* * * *

संसार में एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था होती ही रहती है। अगर उसमें राग-द्वेष का सम्मिश्रण हो गया तो वह सुख-दुख देने वाला होगा। अगर राग-द्वेष का सम्मिश्रण न होने दिया और प्रत्येक अवस्था में समभाव रक्खा गया तो कोई भी अवस्था दुःख नहीं पहुँचा सकती। दुःख से बचने का यही एकमात्र उपाय है।

आश्विन कृष्णा १३

परिवर्त्तन के चक्र पर चढ़ा हुआ सारा संसार घूम रहा है। लेकिन मनुष्य मोह के वश होकर किसी परिवर्त्तन को सुखद और कल्याणकारी मान लेता है और किसी को दुखद एवं अकल्याणकारी। कोई भी नैसर्गिक परिवर्त्तन मनुष्य से पूछकर नहीं होता। वह मानवीय इच्छा से परे है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को यही उचित है कि वह मध्यस्थभाव से परिवर्त्तन को देखता रहे और समभाव धारण करे।

* * * *

आज संसार में ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है।

* * * *

दुःख को दुःख मानने पर ही दुःख दुखी बना सकता है। अगर दुःख को दुःख ही न माना जाय तो वह क्या बिगाड़ सकता है?

* * * *

विषयवासना की जड़ बड़ी गहरी होती है। उसे उखाड़ फैंकने पर ही विरक्ति स्थायी हो सकती है।

आश्विन कृष्णा १४

जो आत्मरक्षा नहीं कर सकता, अपने आश्रित जनों की रक्षा नहीं कर सकता वह इज्जत के साथ जीवित नहीं रह सकता। अपनी जान बचाने के लिए दूसरों का मुँह ताकना मनुष्यता नहीं, यहाँ तक कि पशुता भी नहीं है। पशु भी अपनी और अपने आश्रित की रक्षा करने का पूरा उद्योग करता है। कायरता मनुष्य का बड़ा कलङ्क है। तेजस्वी पुरुष प्राण दे देता है पर कायरता नहीं दिखलाता।

* * * *

सच्चा वीर मृत्यु को खिलौना समझता है। वह मरने से नहीं डरता और जो मरने से नहीं डरता वही सच्चा वीर है। जो मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तत्पर रहता है उसे मारना किसी के लिए भी आसान नहीं है। वास्तव में वही जीवित रहता है जो मृत्यु की परवाह नहीं करता। मरने से डरने वाले तो मरने से पहले ही मरे हुए के समान हैं।

* * * *

मनुष्य को सद्गुणों के प्रति नम्र और दुर्गुणों के प्रति कठोर होना चाहिए।

आश्विन कृष्णा ३०

सुख देने में सुख है, सुख लेने में सुख नहीं है। सुख माँगने से सुख नहीं मिलता है। लोग सुख की भीख माँगते फिरते हैं, सुख के लिए भिखारी बने फिरते हैं, इसी कारण उन्हें सुख नहीं मिलता।

*   *   *   *

मनुष्य की महत्ता और हीनता, शिष्टता और अशिष्टता वाणी में तत्काल झलक जाती है। अतएव संस्कारी पुरुषों को बोलते समय बहुत विवेक रखना चाहिए।

*   *   *   *

जगत् उसी को वन्दना करता है जो जगत् के आघात सहन करता हुआ भी जगत् के उपकार में ही अपना सर्वस्व लगा देता है।

*   *   *   *

परमात्मा का शरण लेने पर विपत्ति मनुष्य को पीड़ित नहीं कर सकती, रुला नहीं सकती; वरन् रोते को धैर्य मिलता है, सान्त्वना मिलती है और सहने की क्षमता मिलती है।

आश्विन शुक्ला १

जब अन्तर्द्रष्टा अपने स्वरूप में रमण करता है—अपने आपे के अनुभव में डूबा होता है तो बाह्य स्वरूप भी इतना सौम्य हो जाता है कि सिंह और हिरन जैसे जन्म-विरोधी पशु भी उसकी गोदी में लोटते हैं और अपना स्वाभाविक वैरभाव भूल जाते हैं। उन्हें पूर्ण अभय मिलता है। आन्तरिक प्रभाव के कारण ही इस प्रकार की निर्वैरवृत्ति प्राणियों में उदित होती है।

* * * *

आत्मा की उपलब्धि द्रष्टा की वृत्ति से होती है।

* * * *

आप परमात्मा के शरण में गये होंगे तो आपको अवश्य यह विचार आएगा कि जैसे मैं परमात्मा का पुत्र हूँ, इसी प्रकार दूसरे प्राणी हैं। अतएव सभी जीव मेरे बन्धु और मित्र हैं।

* * * *

अहिंसा के प्रताप से दुःख भी सुख बन सकता है और विष भी अमृत हो सकता है। आग भी शीतल हो सकती है और कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो सकता है।

आश्विन शुक्ला २

मैत्री उन्हीं के साथ स्थापित करनी चाहिए जिनके साथ अभी मैत्री नहीं है—वैर है। अतएव प्राणीमात्र को परमात्मा के नाते अपना मित्र मानो। किसी के प्रति वैरभाव मत रक्खो। यही वह मार्ग है जिससे परमात्मा के शरण में पहुँचा जा सकता है।

*   *   *   *

वस्तुतः मारने की अपेक्षा मरने के लिए अधिक वीरता की आवश्यकता होती है। लेकिन कुत्ता-बिल्ली की मौत मरना वीरता नहीं, शेर की मौत मरने में अधिक वीरता है।

*   *   *   *

चाहे सुख का समय हो, चाहे दुःख का हो, चाहे सम्पत्ति हो या विपत्ति हो, परमात्मा को मत भूलना। परमात्मा को सदा याद रखना।

*   *   *   *

सत्य पर दृढ़ रहने वाले का जहाज नहीं डूबा करता। जहाज उसका डूबता है जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता है।

आश्विन शुक्ला ३

संसार के समस्त झगड़ों की जड़ क्या है ? असली जड़ का पता लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि सबलों द्वारा निर्बलों का सताया जाना ही सब झगड़ों का मूल है। तू सताये जाने वाले निर्बलों का समर्थ सहायक बनना, यही मेरा उपदेश है और यही मेरा आशीर्वाद है।

* * * *

सट्टेबाज़ सौ-सौ शपथ खाकर भी अपनी शपथ को भङ्ग कर ही डालता है। उसे सट्टा किये बिना चैन नहीं पड़ता। शराबी शराब न पीने का आज निश्चय करता है और शाम होते-होते उसका निश्चय हवा में उड़ जाता है। सट्टा भी दुर्व्यसन है, मदिरापान भी दुर्व्यसन है। इसी तरह शिकार करना भी दुर्व्यसन है। शिकारी की भी वही हालत होती है जो शराबी और सट्टेबाज़ की।

* * * *

बड़ों के बड़प्पन को सौ गुनाह माफ़ समझे जाते हैं। परन्तु मैं कहता हूँ कि संसार में अधिक दोष बड़े कहलाने वालों ने ही फैलाये हैं।

आश्विन शुक्ला ४

सूर्य अपने मण्डल में ही छिपा रहे तो उसकी कद्र कैसे हो सकती है ? अपने मण्डल के बाहर निकलने से ही उसकी कद्र है। इसी में उसकी सार्थकता है। मानवशक्ति की सार्थकता भी इसी में है कि वह दीन-हीन जनों की अनुकम्पा करने के समय घर में ही घुसकर न बैठा रहे।

* * * *

दूसरे के कल्याण के लिए पिया जाने वाला ज़हर पीने से पहले ही ज़हर जान पड़ता है और उसका पीना कठिन भी होता है, परन्तु पीने के पश्चात् वह अमृत बन जाता है और पीने वाले को अमर बना देता है।

* * * *

श्रोत्र आदि इन्द्रियों को संयम की अग्नि में हवन करना महायज्ञ है।

* * * *

अगर आप इतना खयाल रक्खें कि आपके किसी कार्य से भारत की लाज न लुटने पावें, तो भी कुछ कम नहीं है।

आश्विन शुक्ला ५

समुद्र नदियों को निमन्त्रण देकर बुलाता नहीं है। फिर भी समस्त नदियाँ उसी में जाकर मिलती हैं। इसका कारण यह है कि समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करता। संसार की सभी नदियाँ समुद्र में ही जाकर मिलती हैं मगर कभी कोई समुद्र चार अंगुल भी नहीं बढ़ता। जो पुरुष समुद्र की भाँति मर्यादा की रक्षा करते हैं और निष्काम रहते हैं, उन्हें शांति भी मिलती है और उनके पास ऋद्धि दौड़-दौड़ कर आती है। इससे विपरीत, जो धन के लिए, स्त्री के लिए या कीर्ति के लिए हाय-हाय करता रहता है और कामों की ही कामना करता है, उसे कभी शान्ति नहीं मिलती।

* * * *

वही बात हमारे काम की है जो धर्म के साथ सङ्गत है। धर्म के साथ जिसकी संगति नहीं है उससे हमें कोई प्रयोजन नहीं।

* * * *

ज्ञान के संयोग के बिना की जाने वाली क्रिया से भी फल की प्राप्ति नहीं होती।

आश्विन शुक्ला ६

साधारण मनुष्यों के लिए इतिहास में कोई स्थान नहीं है। इतिहास में असाधारण मनुष्य ही स्थान पाते हैं। अगर उनकी असाधारणता अनुकरणीय होती है—देश और जाति के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाली होती है तब तो पढ़ने वाले लोग उन्हें मस्तक झुकाते हैं और यदि उनकी असाधारणता हेय होती है तो लोग घृणा के साथ उन्हें याद करते हैं।

*   *   *   *

ब्रह्मचर्य दिव्य शक्ति और दिव्य तेज प्रदान करने वाली महान् रसायन है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है, उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।

*   *   *   *

बलात् संयम पलवाना और किसी के अधिकार को लूट लेना धर्मनिष्ठ पुरुष का कर्त्तव्य नहीं है। जो स्वयं तो बुढ़ापे में भी नई दुलहिन लाने से नहीं चूकता और लड़की को विधवा बनाकर ब्रह्मचर्य पलवाना चाहता है, उसके लिए क्या कहा जाए! यह धर्म नहीं, धर्म की विडम्बना है। स्वार्थी लोग ऐसे कृत्य करके धर्म को लजाते हैं।

आश्विन शुक्ला ७

जिस शान्ति में से अशान्ति का अंकुर न फूटे, जो सदा के लिए अशान्ति का अन्त कर दे वही सच्ची शान्ति है। सच्ची शान्ति प्राप्त करने के लिए 'सर्वभूतहितरतः' अर्थात् प्राणिमात्र के कल्याण में रत होना पड़ता है।

* * * *

जिसका बालकपन बिगड़ गया उसका सारा जीवन बिगड़ गया और जिसका बालकपन सुधर गया उसका सारा जीवन सुधर गया।

* * * *

आप सच्ची शान्ति चाहते हैं तो अपने समग्र जीवन-क्रम का विचार करें और उसमें अशान्ति पैदा करने वाले जितने अंश हैं, उन्हें हटा दें। इससे आप, आपका परिवार, समाज और देश शान्ति प्राप्त करेगा।

* * * *

दीनता स्वयं एक व्याधि है। उसका आश्रय लेने से व्याधि कैसे मिट सकती है?

आश्विन शुक्ला ८

सच्ची शान्ति भोग में नहीं, त्याग में है और मनुष्य सच्चे हृदय से ज्यों-ज्यों त्याग की ओर बढ़ता जायगा त्यों-त्यों शान्ति उसके समीप आती जायगी।

* * * *

कुकर्म ज़हर से बढ़कर हैं, जब इनकी ओर आपका चित्त खिंचने लगे तब आप भगवान् शान्तिनाथ का स्मरण किया करो। ऐसा करने से आपका चित्त स्वस्थ होगा, विकार हट जाएगा और पवित्र भावना उत्पन्न होगी।

* * * *

भोगों में अतृप्ति है, त्याग में तृप्ति है। भोगों में असंतोष, ईर्षा और कलह के कीटाणु छिपे हैं, त्याग में सन्तोष की शांति है, निराकुलता का अद्भुत आनन्द है, आत्मरमण की स्पृहणीयता है।

* * * *

तत्वज्ञान की कुशलता इस बात में है कि वह वेश्या को भी ज्ञान-प्राप्ति का साधन बना ले।

आश्विन शुक्ला ६

तुम्हारे दोनों हाथों में से एक में नरक की और दूसरे में स्वर्ग की चाबी है। जिसका द्वार खोलना चाहो, खोल सकते हो।

*　　*　　*　　*

भूख के कारण जिसके प्राण निकल रहे हैं, उसे एक टुकड़ा मिल जाय तब भी उसके लिए बहुत है। मगर लोगों को उसकी ओर ध्यान देने की फुर्सत ही कहाँ ?

*　　*　　*　　*

प्रत्येक कार्य को आरम्भ करते समय उसे धर्म की तराजू पर तोल लो। धर्म इतना अनुदार नहीं है कि वह आपकी अनिवार्य आवश्यकताओं पर पाबन्दी लगा दे। साथ ही इतना उदार भी नहीं है कि आपकी प्रत्येक प्रवृत्ति की सराहना करे।

*　　*　　*　　*

गहनों में सुन्दरता देखने वाला आत्मा के सद्गुणों के सौन्दर्य को देखने में अन्धा हो जाता है। त्याग, संयम और सादगी में जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है, वह भोगों में कहाँ ?

आश्विन शुक्ला १०

क्रमशः अपनी भावना का विकास करते चलने से एक समय आपकी भावना प्राणीमात्र के प्रति आत्मीयता से परिपूर्ण बन जाएगी; आपका 'अहं' जो अभी सीमित दायरे में गांठ की तरह सिमटा हुआ है, बिखर जायगा और आपका व्यक्तित्व विराट रूप धारण कर लेगा। उस समय जगत् के सुख में आप अपना सुख समझेंगे।

* * * *

संसार के भोगोपभोग और सुख के साधन असलियत को भुलाने वाले हैं। यह इतने सारहीन हैं कि अनादि काल से अब तक भोगने पर भी आत्मा इनसे तृप्त नहीं हो पाया। अनन्त काल तक भोगने पर भी भविष्य में तृप्ति होने की सम्भावना नहीं है।

* * * *

जो कन्याओं की शिक्षा का विरोध करते हैं वे उनकी शक्ति का घात करते हैं। किसी की शक्ति का घात करने का किसी को अधिकार नहीं है। हाँ, शिक्षा के साथ सत्संस्कारों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

आश्विन शुक्ला ११

हमें चाहे कितने ही अशक्त हों, कितने ही कम पढ़े-लिखे हों, अगर महापुरुषों के मार्गरूपी पुल पर आरूढ़ हो जाएँगे तो अवश्य ही अपने लक्ष्य को—आत्मशुद्धि को—प्राप्त कर सकेंगे। महापुरुषों का मार्ग संसार-सागर पार करने के लिए पुल के समान है। उनके मार्ग पर चलने से सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

* * * *

साँप ऊपर की केंचुली त्याग दे मगर विष का त्याग न करे तो उसकी भयङ्करता कम नहीं होती। इसी प्रकार जो ऊपर से त्यागी होने का ढोंग करते हैं, परन्तु अन्दर के राग-द्वेष आदि विकारों से ग्रस्त हैं, वे महापुरुषों की गणना में नहीं आ सकते।

* * * *

जिस दिन कर्म, चेतना के साथ शत्रुता का व्यवहार करता है, उस दिन कुटुम्बी-जन क्या कर सकते हैं? वह व्याकुल भले ही हो जाएँ और सहानुभूति भले प्रकट करें किन्तु कष्ट से छुड़ाने में समर्थ नहीं होते।

आश्विन शुक्ला १२

अपनी आत्मीयता की सीमा क्षुद्र मत रहने दो। तत्व-दृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि अन्य जीवों में और आपके अपने माने हुए लोगों में कोई अन्तर नहीं है।

* * * *

आत्मा को अमृतमयी बनाओ। यह मत समझो कि माला हाथ में ले लेने से ईश्वर का भजन हो जायगा। ईश्वर को अपने हृदय में विराजमान करो। जब तक शरीर में प्राण हैं तब तक जैसे निरन्तर श्वास चलता रहता है, उसी प्रकार परमात्मा का ध्यान भी चलता रहना चाहिए। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अपथ्य और तामसिक भोजन तथा खोटी सङ्गति को त्याग कर शुद्ध अन्तःकरण से उसका भजन करोगे तो उसे प्राप्त करने की सिद्धि भी अवश्य मिलेगी।

* * * *

प्रबल पुण्य का व्यय करके आत्मा ने कान-इन्द्रिय प्राप्त की है सो क्या इसलिए कि उसे पाप के उपार्जन में लगा दिया जाय? नहीं! इनसे परमात्मा की वाणी सुनना चाहिए। यही कानों का सदुपयोग है।

आश्विन शुक्ला १३

हमला होने पर जो परमात्मा की शरण जाता है उसे क्षण-क्षण में सहायता मिले विना नहीं रहती। जो मन और वाणी के भी अगोचर है, जिसकी शक्ति के सामने तलवार, आग, ज़हर और देवताओं की शक्ति भी तुच्छ है, उस महा-शक्ति के सामने सारा संसार तुच्छ है।

* * * *

ऐ साधुओ, तुम सावधान होओ। तुमने जिस महान् ध्येय को प्राप्त करने के लिए संसार के सुखों का परित्याग किया है, जिस सिद्धि के लिए तुम अनगार, अकिंचन और भिक्षु हुए हो, उस ध्येय को क्षणभर भी मत भूलो। उसकी पूर्ति के लिए निरन्तर उद्योगशील रहो। तुम्हारा प्रत्येक कार्य उसी लक्ष्य की सिद्धि में सहायक होना चाहिए।

* * * *

आप फूल की छड़ी बना सकते हैं तो नागिन क्यों बनाते हैं? आपकी आत्मा में जो शक्ति है वह अनन्त पुण्य का निर्माण कर सकती है, फिर उसे आप घोर पाप के निर्माण में क्यों लगा रहे हैं?

आश्विन शुक्ला १४

धर्मात्मा पुरुष किसी के साथ दगा नहीं करता। वह प्राण देने को तैयार हो जाता है पर अपना धर्म नहीं छोड़ता। धर्म को वह प्राणों से ज्यादा प्यारा समझता है। धर्म उसके लिए परम कल्याणमय होता है। वह समझता है कि मैं नास्तिक नहीं, आस्तिक हूँ। आत्मा अमर है। मैं अनन्तकाल तक रहने वाला हूँ। इसलिए थोड़े समय तक रहने वाली तुच्छ चीज़ के लोभ में पड़कर मैं धर्म का परित्याग नहीं कर सकता। इस प्रकार विचार करने वाला मनुष्य सदा सुखी रहता है।

* * * *

सम्यग्ज्ञान के अपूर्व प्रकाश में दुःखों के आद्य स्रोत को देखकर उसे बन्द कर देने से ही दुःखों का अन्त आता है। दुःखों का आद्य स्रोत आत्मा का विकारमय भाव है।

* * * *

तू भ्रम में क्यों पड़ा है? अपने अन्तरतर की ओर देख! वहीं तो वह बड़ा कारखाना चल रहा है जहाँ सुख और दुःख, तेरी भावनाओं के साँचे में ढल रहे है!

आश्विन शुक्ला १५

हे मानव ! तू बाहरी वैभव में क्यों उलझा है ? स्थूल और निर्जीव पदार्थों के फेर में क्यों पड़ा है ? उन्हें सुख-दुःख का विधाता क्यों समझ रहा है ? सुख-दुःख के मूल स्रोत की खोज कर। देख कि यह कहाँ से और कैसे उत्पन्न होते हैं ? अपने मन को स्थिर करके, अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाकर विचार करेगा तो स्पष्ट दिखाई देगा कि तेरा आत्मा ही तेरे सुख और दुःख आदि का विधाता है। उसी ने इनकी सृष्टि की है और वही इनका विनाश करता है। इस तथ्य को समझ जाने पर तेरी बुद्धि शुद्ध और स्थिर हो जायगी और तू बाह्य पदार्थों पर राग-द्वेष करना छोड़ देगा। उस अवस्था में तुझे समता का ऐसा अमृत प्राप्त होगा जो तेरे समस्त दुःखों का, समस्त व्यथाओं का और समस्त अभावों का अन्त कर देगा।

* * * *

जब राग-द्वेष नहीं होता तो आत्मा में समता की सुधा प्रवाहित होने लगती है। उस सुधा में ऐसी मधुरता होती है कि उसका आस्वादन करके मनुष्य निहाल हो जाता है। आत्मा को सुखी और शान्त बनाने के लिए यह भावना अत्यन्त उपयोगी है।

कार्तिक कृष्णा १

न तो ज्ञानविकल पुरुष सिद्धि पाता है और न क्रिया-विकल पुरुष सिद्धि पाता है। जब ज्ञान और क्रिया का संयोग होता है तभी मुक्ति मिलती है। जो लोग ज्ञानहीन हैं और थोथी क्रिया को ही लिए बैठे हैं उन्हें ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान के अभाव में वे भ्रष्ट हुए बिना नहीं बच सकते और जो लोग अकेले ज्ञान को ही लेकर बैठे हैं और क्रिया को निरर्थक मानते हैं उन्हें क्रिया का भी आश्रय लेना चाहिए। क्रिया के बिना वे भी भ्रष्ट हुए बिना नहीं रहेंगे।

*   *   *   *

अनन्त पुण्य की पूँजी लगाकर आपने यह मानव भव पाया है और दूसरी सामग्री पाई है। अब इस सामग्री से आप क्या कमाई कर रहे हैं ?

*   *   *   *

ज्ञानी लोग जिसे मूर्ख कहते हैं, उसे अज्ञानी बुद्धिमान् कहते हैं और ज्ञानी जिसे बुद्धिमान् कहते हैं उसे अज्ञानी मूर्ख कहते हैं।

कार्तिक कृष्णा २

सोने-चांदी में सुख होता तो सबसे पहले सोने-चांदी वालों की ही गर्दन क्यों काटी जाती? स्त्री से सुख होता तो ज़हर क्यों दिया जाता? इन सब बाह्य वस्तुओं से सुख होने का भ्रम दूर कर दे। निश्चय समझ ले कि सुख तेरी शान्ति, समता सन्तोष और स्वस्थता में समाया है। तेरी भावनाएँ ही सुख को उत्पन्न करती हैं। स्त्री, पुत्र और धनवैभव का अहङ्कार छोड़ दे।

* * * *

जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है वह हमारे ही प्रयत्नों का फल है। हमारे ही प्रयत्न से उसका अन्त होगा। दीन बनकर दूसरे का आश्रय लेने से कुछ हासिल होने वाला नहीं है।

* * * *

दया रूप मोक्षमार्ग ही भगवान् का चरण है और उस मोक्षमार्ग को ग्रहण करना ही भगवान् के चरण ग्रहण करना है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को ग्रहण न किया जाय तो भगवान् के साक्षात् मिल जाने पर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

कार्तिक कृष्णा ३

कहा जा सकता है कि व्यापार में नफा लेकर धर्म कर देने—दान दे देने में क्या हानि है ? इसका उत्तर यह है कि पहले कीचड़ से हाथ भरे जाएँ और फिर धोए जाएँ; ऐसा करने से क्या लाभ है ?

*   *   *   *

आरम्भ और परिग्रह का त्याग किये बिना केवलि-द्वारा प्ररूपित धर्म नहीं सुहाता । यह पीली और सफेद मिट्टी (अर्थात् सोना और चांदी) ही धर्म का आचरण करनें में बाधक नहीं है वरन् लोगों की बढ़ी हुई तृष्णा भी बाधक है ।

*   *   *   *

अगर आप धन के सेवक नहीं हैं तो भगवान् की सेवा कर सकते हैं और यदि धन के सेवक हैं तो फिर भगवान् के सेवक नहीं बन सकते ।

*   *   *   *

पुरुषार्थ करने से कुछ न कुछ फल निकल सकता है, मगर रोना तो अपने आपको डुबाना ही है ।

कार्तिक कृष्णा ४

चार आने के लिए झूठ बोलना, कम तौलना, कम नापना, अच्छी चीज़ में बुरी मिलाकर बेचना और झूठे दस्तावेज़ बनाना धन की गुलामी करना नहीं है तो क्या है ? ऐसा धन धनी को भोगता है, धनी उसको नहीं भोगता ।

* * * *

बुद्धिमत्ता का ढोंग छोड़कर अगर आप अपने अन्तःकरण में बालसुलभ सरलता उत्पन्न कर लें तो कल्याण आपके सामने उपस्थित हो जाय ।

* * * *

क्या ऋद्धिमान् के प्रति ईर्षा करने से आप ऋद्धिशाली हो जाएँगे ? अथवा वह ऋद्धिशाली, ऋद्धिहीन हो जायगा ? अगर आपकी ईर्षा इन दोनों में से कोई भी परिवर्त्तन नहीं कर सकता तो फिर उससे लाभ कहाँ है ? ईर्षा करने से लाभ तो कुछ भी नहीं होता, उलटी हानि होती है । ईर्षालु पुरुष अपने आपको व्यर्थ जलाता है और अपने विवेक का विनाश करता है । वास्तव में ऋद्धि का बीज पुरुषार्थ है । पुरुषार्थ करने वाले ही ऋद्धि के पात्र बनते हैं ।

कार्तिक कृष्णा ५

सच्चा पुरुषार्थी कभी हार नहीं मानता। वह अगर असफल भी होता है तो उसकी असफलता ही उसे सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा करती है।

*   *   *   *

मुक्ति का मार्ग लम्बा है और कठिन भी है, यह सोचकर उस ओर पैर ही न बढ़ाना एक प्रकार की कायरता है। मार्ग कितना ही लम्बा क्यों न हो, अगर धीरे-धीरे भी उसी दिशा में चला जायगा तो एक दिन वह तय हो ही जायगा, क्योंकि काल भी अनन्त है और आत्मा की शक्ति भी अनन्त है।

*   *   *   *

अपने गुणों पर ध्यान न देकर दोषों पर ध्यान देना आवश्यक है। यह देखना चाहिए कि आत्मा कहाँ भूल करता है?

*   *   *   *

जिसके अन्तःकरण में भगवद्भक्ति का अखण्ड स्रोत बहता है वह पुरुष बड़ा भाग्यशाली है। उसके लिए तीन लोक की सम्पदा-निखिल विश्व का राज्य भी तुच्छ है।

कार्तिक कृष्णा ६

जैसे मामूली वस्तु भी नदी के प्रवाह में बहती हुई समुद्र में मिल जाती है, उसी प्रकार भक्ति के प्रवाह में बहने वाला मनुष्य ईश्वर में मिल जाता है अर्थात् स्वयं परमात्मा बन जाता है। भक्ति वह अलौकिक रसायन है जिसके द्वारा नर नारायण हो जाता है। भक्ति से हृदय में अपूर्व शान्ति और असाधारण सुख प्राप्त होता है।

* * * *

जिसमें भक्ति है उसमें शक्ति आये बिना नहीं रहेगी।

* * * *

जो अपनी लघुता को समझता है और उसे बिना संकोच प्रकट कर देता है, समझना चाहिए कि वह अपनी लघुता को त्यागना चाहता है और पूर्णता प्राप्त करने का अभिलाषी है।

* * * *

दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानकर उनकी सहायता करना और अपनी संकीर्ण वृत्तियों को व्यापक बना लेना ही आध्यात्मिक उत्कर्ष का उपाय है।

कार्तिक कृष्णा ७

तुम जो भक्ति करो, अपनी अन्तःप्रेरणा से करो। दूसरे के दबाव से या दूसरे को खुश करने के उद्देश्य से भक्ति मत करो। ऐसा करने में परमात्मा की भक्ति से वंचित रह जाना पड़ता है।

* * * *

लोग मनुष्य के शरीर को अछूत मानकर उससे परहेज़ करते हैं। मगर हृदय की अपवित्र वासनाओं से उतना परहेज़ नहीं करते। वास्तव में अपावन वासनाएँ ही मनुष्य को गिराती हैं और उसकी छूत से अत्याधिक बचने की आवश्यकता है।

* * * *

परमात्मा का यह आह्वान है कि तू जैसा है वैसा ही मेरे पास आ। यह मत विचार कि मेरे पास ऋद्धि, सम्पदा या विद्वत्ता नहीं है तो मैं परमात्मा के पंथ पर कैसे पाँव रख सकूँगा! इस विचार को छोड़ दे और जैसा है वैसा ही परमात्मा की शरण में जा। जैसे कमल के पत्ते का संयोग पाकर जल की साधारण बूँद भी मोती की कान्ति पा जाता है, उसी प्रकार तू परमात्मा का संयोग पाकर असाधारण बन जायगा।

कार्तिक कृष्णा ८

गरीबों की सहायता की पद-पद पर आवश्यकता रहती है। अमीरों की विशाल और सुन्दर हवेलियाँ गरीबों के परिश्रम ने ही तैयार की हैं, अमीरों का षट्रस भोजन गरीबों के पसीने से ही बना है। अमीरों के बारीक और मुलायम वस्त्र गरीबों की मिहनत के तारों से ही बने हैं।

* * * *

इस विशाल विश्व में एक पर दूसरे की सत्ता चल रही है, परन्तु एक सत्ता वह है जिस पर किसी की सत्ता नहीं चलती। उस सत्ता का आश्रय समस्त दुःखों का अन्त करने वाला है। वह स्वतः मङ्गलमयी सत्ता अपने आश्रित को मङ्गलमय बना लेती है।

* * * *

हृदय और मस्तिष्क का अन्तर समझ लेने की आवश्यकता है। हृदय के काम प्रायः जगत्-कल्याण के लिए होते हैं और मस्तिष्क के काम प्रायः जगत् के अकल्याण के लिए हुआ करते हैं। कपटाचार मस्तिष्क की उपज है, जिसमें दिखलाया कुछ जाता है और किया कुछ और जाता है।

कार्तिक कृष्णा ६

जो शक्ति आँखों से देखी नहीं जा सकती और जिसका वाणी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, उस पर विश्वास हुआ, वह शक्ति आपके ध्यान में आ गई तो आपके भीतर एक अभूतपूर्व और अद्भुत शक्ति पैदा होगी। वही शक्ति रसायन है।

*   *   *   *

संसार की समस्त शक्तियों से आपकी चैतन्य शक्ति बढ़कर है और अलौकिक है। जड़शक्तियों को एकत्रित करके अगर आप चैतन्य शक्ति से तोलेंगे तो पता चलेगा कि अन्य शक्तियाँ चैतन्य शक्ति के सामने कुछ भी नहीं हैं—नगण्य हैं।

*   *   *   *

पाप में वाणी भले हो, कलेजा नहीं होता।

*   *   *   *

भगवद्भक्ति की प्राथमिक भूमिका भूतमात्र को अपना भाई मानकर उसके प्रति सहानुभूति रखना है। प्राणीमात्र के प्रति आत्मभाव रखकर भगवान् की स्तुति करने से कल्याण का द्वार खुलता है।

कार्तिक कृष्णा १०

हृदय की उपज और मस्तक की उपज के कामों की पहचान यह है कि जिस काम से अपना भी भला हो और दूसरे का भी भला हो वह काम हृदय की उपज है। जिन कामों से अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना होता है, दूसरे के कल्याण की ओर दृष्टिपात नहीं किया जाता किन्तु दूसरों को पंगु बनाना अभीष्ट होता है, वे काम मास्तिष्क की उपज हैं। मास्तिष्क की उपज के काम राक्षसी राज्य के हैं और हृदय की उपज के काम रामराज्य के हैं।

* * * *

अगर आपके हृदय में इस प्रकार की भावना बद्धमूल हो गई कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है और उसके प्रति दुर्व्यवहार करना परमात्मा के प्रति दुर्व्यवहार करना है तो आप थोड़े ही दिनों में देखेंगे कि आपके अन्तःकरण में अपूर्व भक्तिभाव पैदा होगा और आप परमात्मा के सच्चे उपासक बन जाएँगे।

* * * *

विश्व के कल्याण में ही परमेश्वर का वास है। संसार के कल्याण की आन्तरिक कामना ही परमेश्वर का दर्शन कराती है।

कार्तिक कृष्णा ११

मनुष्यशरीर स्वाभाविक रीति से बनी हुई ईश्वर की आकृति है। लाख प्रयत्न करने पर भी कोई कारीगर ऐसी आकृति नहीं बना सकता। जब मनुष्य परमात्मा की मूर्ति हैं तो इन्हें देखकर परमात्मा का ध्यान आना चाहिए।

* * * *

मत भूलो कि आज जो लखपती है, वही कल कङ्गाल हो जाता है। फिर परोपकार करने में क्यों कृपण बनते हो? कृपणता करके बचाया हुआ धन साथ नहीं जायगा, किन्तु कृपणता के द्वारा लगने वाला पाप साथ जायगा।

* * * *

जीवन के गुलाम ही जीवन-रक्षा के लिए अपने आपको अत्याचारी की इच्छा पर छोड़ देते हैं।

* * * *

सत्य क्या शक्तिहीन है? नहीं। सत्य में स्वयंभू क्षमता है। सत्य का बल प्रबल है। सत्य की शक्ति असीम है। सत्य के सहारे मनुष्य निश्चिन्त रह सकता है।

कार्तिक कृष्णा १२

जो तृष्णा की विकराल नदी में गोते खा रहा है, उसे सुख कहाँ ? सुख तो तभी मिलेगा जब तृष्णा की नदी में से निकल जाय। तृष्णा की नदी से बाहर निकल जाने वाला अक्षय, असीम और अनन्त सुख का पात्र बनता है।

*　　*　　*　　*

जो काम एक चुल्लू पानी से हो सकता है, वह क्या क्षीरसागर से नहीं होगा ? इसी प्रकार जो काम मन्त्र या भूत से हो सकता है, क्या वह ईश्वर से नहीं होगा ?

*　　*　　*　　*

त्याग के बदले में किसी वस्तु की कामना करना निरा बनियापन है। ऐसे त्यागी और सट्टेबाज़ में क्या अन्तर है ? सच्चा त्यागी वही है जो निष्कामभावना से त्याग करता है।

*　　*　　*　　*

चाहे नौकर रहो या मालिक बनो, जब तक पारस्परिक विश्वास की कमी रहेगी, काम नहीं चलेगा और पारस्परिक विश्वास दोनों की नीतिनिष्ठा से जनमता है।

कार्तिक कृष्णा १३

भूत के भय से अगर परमात्मा को स्मरण करते हो तो समझो कि तुमने परमात्मा को समझ ही नहीं पाया। उस परमदृष्टा परमात्मा को देखने के पश्चात्, उसके धर्म को धारण के बाद भी अगर वहम बना रहा तो फिर कब तुम्हारा उद्धार होगा ?

* * * *

जिस महानुभाव के चित्त में ईश्वर का दिव्य स्वरूप बस जाता है, जो दया से भूषित है, अहिंसा की भावना से जिसका हृदय उन्नत है, वह कभी किसी प्राणी का अनिष्ट नहीं करता। अगर कोई उसका अनिष्ट करता है तो भी वह उससे बदला लेने का विचार नहीं करता।

* * * *

सांसारिक वस्तुओं पर जितनी अधिक आसक्ति रक्खोगे, उतनी ही दूर वह होती जाएँगी। आसक्ति रखने पर वस्तु कदाचित् मिल भी गई तो वह सुख नहीं, दुःख ही देगी। उदार के पास धन होगा तो वह सुख पाएगा। कंजूस उसी धन से व्याकुल रहता है, बल्कि हाय-हाय करके मरता है।

कार्तिक कृष्णा १४

प्रभो ! मेरे हृदय में ऐसा भाव भर दो कि मैं किसी के प्रति अन्याय न करूँ। राजसत्ता का मद मेरे मन को मलिन न होने दे। मैं प्रजा की सुख-शान्ति के लिए अपने स्वार्थों को त्यागने के लिए सदैव उद्यत रहूँ।

* * * *

संसार के समस्त दुःखों की जड़ है—मेरे-तेरे का भेदभाव। जब तक यह जड़ हरी-भरी है, दुःखों का अंकुर फूटता ही रहेगा। दुःखों से बचने के लिए इस भेदभावना को नष्ट करना आवश्यक है।

* * * *

जैसे अमृत बिना धोखे की चीज़ है, उसी प्रकार परमात्मा की प्रीति भी बिना धोखे की है।

* * * *

मित्रो ! परमात्मा को प्रसन्न करना हो, परमात्मप्रेम जगाना हो तो वह तुम्हारे सामने मूर्त्तिमान् खड़ा है। उसे अपना लो। दीन-दुखिया से प्रेम लगा कि परमात्मा से प्रेम लग गया।

कार्तिक कृष्णा ३०

जाग, ऐ मानव, उठ। समय सरपट चाल से भागा जा रहा है। तुझे जो क्षण मिला है, वह फिर कभी नहीं मिलेगा। मनुष्यजीवन की यह अनमोल घड़ियाँ अगर भोगविलास में गँवा देगा तो सदा के लिए पश्चात्ताप करना ही तेरी तकदीर में होगा। इसलिए अक्षय कल्याण की साधना के मार्ग पर चल। देख, अनन्त मङ्गल तेरे स्वागत की प्रतीक्षा कर रहा है।

* * * *

तप से शरीर भले दुर्बल प्रतीत हो, मगर आत्मा असाधारण बलशाली बन जाती है।

* * * *

गृहस्थ अगर प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभावना धारण नहीं कर सकता तो इसके मायने यह हुए कि वह धर्म का ही पालन नहीं कर सकता। क्या धर्म इतना संकीर्ण है कि सर्वसाधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते? धर्म का प्रांगण बहुत विशाल है। उसमें सभी के लिए स्थान है।